शब्दों का जीवन

शब्दो के जन्म, उनके आन्तरिक और बाह्य परिवर्तनो, तथा अन्य सम्बद्ध भाषा-वैज्ञानिक तथ्यो का मनोरजक अध्ययन

भोलानाथ तिवारी



राजकमल प्रकाशन

नयी दिल्ली • पटना

मूल्य : रु० १०.००

प्रथम संस्करण : १९५४
द्वितीय संशोधित संस्करण : १९७७

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
८, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२

मुद्रक : शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस,
के-१८, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

चित्रकार : चाँद चौधरी

पुस्तक के विषय में

आगे के पृष्ठो मे मनुष्य के जीवन मे आनेवाली अवस्थाओ की भाँति शब्दो के जीवन की विभिन्न अवस्थाओ का परिचय दिया गया है।

इस लेखन मे मेरा प्रधान उद्देश्य रहा है भाषाविज्ञान के शुष्क सिद्धान्तो और उदाहरणो को मनोरजक रूप मे प्रस्तुत करना। मै नही कह सकता कि अपने इस प्रयास मे मुझे कहाँ तक सफलता मिली है।

यह दूसरा संस्करण काफी परिवर्तित-परिवर्धित तथा सशोधित है। इसके अन्त मे शब्दो के अध्ययन मे सम्बद्ध काफी नयी सामग्री जोड दी गयी है।

आशा है, यह पुस्तक सामान्य पाठको तथा भाषा-विज्ञान के विद्यार्थियो के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

—भोलानाथ तिवारी

अनुक्रम

१ :: शब्द जनमते हैं

जी हाँ, शब्द जनमते है। यह ठीक है कि भारतीय परम्परा में शब्द को ब्रह्म कहा गया है, किन्तु ब्रह्म तो अजन्मा है, जबकि शब्द जनमते हैं, वे जन्मा हैं, ठीक इन्सान की तरह। इसीलिए शब्द को ब्रह्म न कहकर इन्सान कहना कही ज्यादा सही है। नयी घटनाएँ, नये विचार, नयी परम्पराएँ, नयी वस्तुएँ प्राय· नये शब्दो को जन्म देती हैं। पाकिस्तानियों ने १९६५ मे भारत मे घुस-पैठ की और हिन्दी मे 'घुस-पैठिया' शब्द ने जन्म लिया। विभिन्न प्रलोभनो ने हमारे विधायको को दल बदलने को मजबूर किया जिसका परिणाम था 'दलबदलू' शब्द का जन्म। छन्दो में पहले पंक्तियाँ बराबर होती थी, मुक्तक छन्द चला तो पंक्तियाँ छोटी-बडी होने लगी। उन्हें देखकर किसी ने 'केंचुवा छन्द' नाम दिया तो किसी ने 'रबड़ छन्द'। कहना न होगा कि केचुवा और रबड दोनो ही फैल-सिकुड़कर छोटे-बड़े हो जाते है। तो इस तरह शब्द जनमते रहे हैं, जनम रहे हैं, और जनमते रहेगे।

शब्द जनमते या बनते हैं कुछ आधारों पर जैसे ध्वनि, स्वरूप, रंग, व्यक्ति-नाम, स्थान-नाम, कार्य, अन्धविश्वास, सक्षेप, धातु, शब्द ('उपसर्ग, प्रत्यय आदि जोड़कर), कहानी, कल्पना, स्वाद, बनाने की प्रक्रिया, मूल्य, गुण या विशेषता, सख्या, प्रयोग आदि का आधार। यहाँ कुछ आधारो को संक्षेप मे सोदाहरण लिया जा रहा है।

ध्वनि

बहुत-से शब्द ध्वनि के आधार पर जनमते है। प्राचीन भारतीयों ने कोयल की 'कूक' या 'कोक' सुनी और उस ध्वनि के आधार पर उसे 'कोकिल' नाम दे दिया। 'फटफट' करने के कारण मोटर साइकिल को बच्चे और बहुत-से देहाती 'फटफटिया' कहते हैं। भडभडाना, खटखटाना, ठकठकाना, धडधडाना, कडकना, मिमियाना, भूंकना, हिनहिनाना, बिबियाना जैसे क्रियात्मक शब्द ध्वनि के आधार पर ही जनमे है। 'लोमडी' की आवाज़ 'खैं-ख' जैसी सुनायी पडती है, इसी आधार पर भोजपुरी मे लोमड़ी को 'खैखर' कहते है। ऐसे ही 'ती-ती' आवाज़ करने के कारण 'तीतर' को सस्कृत मे 'तित्तिर' कहा गया। 'तीतर' शब्द उसी 'तित्तिर' का परिवर्तित रूप है। झरना, निर्झर, पों-पो, भोपू, कलकल, छलछल, झनझन, झनकार, खनक आदि अन्य भी अनेक शब्द इसी प्रकार जनमे हैं।

एक अन्य रूप मे भी ध्वनि के आधार पर नये शब्द जनमते हैं। 'भौंरे' का 'भ्रमर' नाम पुराना है, जो उसके 'भ्रमण' अर्थात् 'घूमने' के कारण पडा। 'भ्रमर' मे दो 'र' हैं, एक तो 'भ्र' मे और दूसरा 'र' मे। 'र' ध्वनि को सस्कृत मे 'रेफ' कहते हैं। इसी आधार पर संस्कृत मे भौंरे के लिए एक नया शब्द चल पडा 'द्विरेफ' अर्थात् जिसमें दो (द्वि) र (रेफ) हो। यो इस रूप मे ध्वनि के आधार पर शब्दो का जन्म कम ही होता है।

व्यक्ति-नाम

व्यक्तियो के नाम के आधार पर भी शब्द बनते हैं। इनमें कुछ व्यक्तियो के नाम तो स्वय सामान्य शब्द बन जाते हैं (जैसे 'नारद' अब 'इधर की उधर लगानेवाला' अर्थ का सामान्य शब्द बन चुका है: 'उस आदमी से सावधान रहना, वह तो पूरा नारद है') और कुछ नामो के आधार पर सामान्य शब्द बन जाते हैं। जैसे नादिरशाही, हिटलरशाही, गांधीवाद, भगीरथ-प्रयत्न, रामबाण, रामराज्य, बनारसी

(ठग), बलियाटिक (मूर्ख) आदि। भाषा भी अजीब है। बहुत बुरा काम करनेवालो को भी अमर बना देती है—चाहे बुरे अर्थ मे ही सही। ठीक ही कहा है, बदनाम अगर होगे तो क्या नाम न होगा। जयचन्द (देशद्रोही), मन्थरा (कुमन्त्रणा से घर फोडनेवाली), नारद (इधर की उधर लगानेवाला) बदनाम होकर भी भाषा मे अमर है। ऐसे ही विभीषण देशद्रोही के पर्याय बन चुके है, तो सीता-सावित्री पतिव्रता के। युधिष्ठिर और हरिश्चन्द्र हद दर्जे के सच्चे व्यक्ति के प्रतीक हैं तो रावण और कस अत्याचारी के। भीम (बहुत मोटा-ताज़ा और बलिष्ठ : भारतभीम), रुस्तम (बहुत मोटा-ताज़ा और बलिष्ठ रुस्तम-ए-हिन्द), एकलव्य (आदर्श शिष्य), कामदेव (अत्यन्त सुन्दर पुरुष), तिलोत्तमा (अनिंद्य सुन्दरी), रति (अनिंद्य सुन्दर), कुबेर (बहुत सम्पत्तिवाला), लक्ष्मी (धन की अधिष्ठात्री देवी), भगीरथ (अपने यत्न से असम्भव को सम्भव कर लेनेवाला), राम (अत्यन्त आदर्श धर्मनिष्ठ तथा न्यायी राजा), लक्ष्मण (आदर्श अनुज), भरत (आदर्श अनुज), बम भोलेनाथ (सीधा-सादा), सिकन्दर (महान्, बडा तकदीर का सिकन्दर), भीष्म (प्रण पर अटल रहनेवाला . भीष्मप्रतिज्ञा), सूरदास (अन्धा), रैदास (चमार), कैकेयी, मीरा (राजस्थान मे कही-कही मीरा का अर्थ होता है परिवार का कहना न माननेवाली लडकी या स्त्री) आदि भी इसी प्रकार के शब्द है।

'बाईकाट' शब्द हिन्दी मे अंग्रेज़ी से आया है। इसका अर्थ 'बहिष्कार' होता है। गांधीजी द्वारा चलाये गये राष्ट्रीय आन्दोलन और शान्त युद्ध [जिसमे अन्य बहुत-सी बातो के साथ विदेशी वस्तुओं एवं सस्थाओ का बाईकाट (बहिष्कार) भी किया जाता था] के समय यह शब्द हिन्दी ही नही अपितु भारत की सभी भाषाओ मे घुस आया। आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि अन्य अंग्रेज़ी चीज़ों के साथ अंग्रेज़ी भाषा का भी बाईकाट किया गया था, फिर भी, उसी अंग्रेजी का होते हुए भी यह शब्द भारतीय भाषाओ मे घुस आया और घर कर गया। वह आन्दोलन ही 'बाईकाट-आन्दोलन' के नाम से प्रसिद्ध रहा है। किसी शब्द की शक्ति का यहाँ पता चलता है। अंग्रेज़ी में यह शब्द

बहुत पुराना नही है। आयरलैण्ड के काउटी मेयो मे किसी जमीदार के यहाँ एक कैप्टेन बॉयकाट नाम का कारिन्दा था। यह बडा क्रूर था और प्रजा को बहुत परेशान करता था। प्रजावर्ग ने आजिज़ आकर सन् १८८० के दिसम्बर महीने मे आपस मे तय करके इसके सारे काम छोड दिये—नाई ने हजामत बनानी छोड दी, धोबी ने कपडे धोना, रसोइए ने रसोई बनाना इत्यादि। फल यह हुआ कि शीघ्र ही उसे झुकना पड़ा। उसके बाद ही इस प्रकार के बहिष्कार के लिए उसका नाम क्रिया तथा संज्ञा रूप मे अंग्रेज़ी मे प्रयुक्त होने लगा। यूरोप की जर्मन तथा फ्रांसीसी आदि भाषाओ मे भी यह शब्द फैल गया है।

'एटलस' शब्द भी इसी प्रकार का है जो हिन्दी का न होते हुए भी अब हिन्दी का अपना हो गया है। नक्शों की पुस्तक को 'एटलस' कहते है। इसकी उत्पत्ति की कथा बड़ी विचित्र है। 'एटलस' एक दैत्य था, जिनका नाम यूनानी पौराणिक कथाओ मे मिलता है। होमर मे भी यह नाम आया है। यह उन खम्भो का रक्षक था जिनपर स्वर्ग टिका है। एक अन्य मत से यह विश्व को अपने कन्धो पर लिये था। यह भी कहा जाता है कि भगवान् के विरुद्ध कभी यह लड़ाई करने को भी तैयार हुआ और उसी के फलस्वरूप इसे पहाड हो जाने का शाप मिला था। अफ्रीका में आज भी 'एटलस' नाम का पर्वत है और लोगो का विश्वास है कि स्वर्ग उसी पर टिका है। नक्शे की पुस्तक के लिए इसके नाम के प्रयोग मे प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता जान मरकेटर (१५१२-१५९६) का हाथ है। उसने अपने नक्शो की पुस्तक मे आरम्भ मे (फ्रांटिसपीस) एक चित्र दिया था जिसमे एक दैत्य अपने कन्धो पर विश्व को लिये था। उसके नीचे 'एटलस' शब्द छपा था। उसी को लेकर नक्शों की पुस्तकों के लिए यह शब्द प्रचलित हो गया और अब इस शब्द का प्रयोग प्राय 'नक्शो की पुस्तक' के अर्थ मे ही होता है।

'मर्सराइज्ड' शब्द भी अंग्रेज़ी से ही आया है। यह शब्द भी एक नाम पर आधारित है। मर्सर (Mercer, १७९१-१८६६) नाम का अंग्रेज़ जुलाहा था। १८४४ मे इसने एक ऐसा मसाला तैयार किया जिसमें डुबोने से सूती कपड़ों मे स्थायी चमक आ जाती थी और जो

धुलने पर भी खराब नही होती थी । इसी जुलाहे के नाम पर इस मसाले मे डुबोने की क्रिया को 'मर्सराइज़' कहने लगे और इस मसाले मे डुबाये कपड़े को 'मर्सराइज्ड' ।

हिन्दी मे 'सैण्डो' उस बनियान या गंजी को कहते है जिसमें बाँह या आस्तीन नही होती । यह शब्द मूलतः एक पहलवान का नाम था, जिसने सर्वप्रथम इस प्रकार के बनियान का प्रयोग किया । बाद मे उसी का नाम इस विशेष प्रकार के बनियान के लिए चल पडा । आज सैण्डी तो मर गया किन्तु उसका नाम इस रूप में अमर है ।

जॉर्जेट एक फ्रांसीसी दर्जिन थीं, जो औरतो के कपडे बहुत अच्छे सिलती थी । वस्त्र प्रायः इसी कपड़े (जॉर्जेट) के बनाती थीं, अतः फ्रास मे उनके नाम के आधार पर इस कपडे को 'जॉर्जेट' कहने लगे । बाद मे यह शब्द फ्रांसीसी भाषा से चलकर और भी अनेक भाषाओं में आ गया ।

स्थान-नाम

बहुत-से शब्द स्थानो के नाम के आधार पर भी बन जाते हैं । दक्षिण भारत का प्रसिद्ध नगर है 'सूरत' । पुर्तगालियो ने कभी सूरत को अपना केन्द्र बनाया था और वहीं से वे लोग खाने की तम्बाकू भारत के कई क्षेत्रो मे भेजते थे । 'सूरत' से आने के कारण ही इस खाने की तम्बाकू को बहुत-से स्थानो पर 'सुरती' या 'सुर्ती' कहने लगे । हिन्दी प्रदेश के कई पूर्वी क्षेत्रो मे आज भी खाने की तम्बाकू को 'सुर्ती' कहते है । ऐसे ही 'चीनी' (शक्कर) शब्द 'चीन' पर आधारित है । 'चीनी' आज जिस रूप मे मिलती है, वह पहले-पहल चीन मे ही बनी थी । इसी प्रकार 'मिस्री' का सम्बन्ध मिस्र (देश) से है । मिस्री भारत में मूलत कदाचित् वही से आयी थी ।

'एकेदमी' (मूल शब्द Academeia) मूलत. उस बगीची का नाम था जहाँ बैठकर प्लेटो और उनके विद्यार्थी दार्शनिक वाद-विवाद किया करते थे । यही शब्द बाद मे विभिन्न भाषाओं मे 'एकेडेमी,' 'अकादमी' आदि रूप मे 'विद्या-संस्थान' अर्थ मे प्रचलित हो गया ।

'बँगला' (विशेष प्रकार का मकान) शब्द का सम्बन्ध 'बंगाल' से है। इस प्रकार के मकान सर्वप्रथम वही बने, और फिर वही से अन्य प्रदेशो मे इनका प्रचार हुआ।

'सैण्डविच' इग्लैण्ड की एक स्टेट का नाम था, जहाँ के सामन्त जान मोटेगु (१७१८-९२) दिन-रात जुआ खेलते रहते थे। यहाँ तक कि उन्हे खाने-पीने की भी सुध नही रहती थी। एक दिन भूख लगी थी किन्तु जुआ छोडकर खाना इनके लिए सम्भव न था। उन्होने अपने रसोइए को आज्ञा दी कि दो स्लाइसो के बीच तला गोमास रखकर वह ले आये। अब क्या था। एक हाथ से वे इसे खाते रहे और दूसरे हाथ से खेलते रहे। अब तो वे रोज़ जुए मे खलल न पडने देने के लिए यही खाने लगे और धीरे-धीरे इस खाद्य का चारो ओर प्रचार हो गया। इनके स्टेट मे पहले यह प्रचलित हुआ और फिर वहाँ से बाहर इसीलिए स्टेट के नाम के आधार पर इसे भी 'सैण्डविच' कहने लगे।

'बैडमिंटन' को अपने मूल रूप मे डॉ० बिल्फ्रेड फक तथा कुछ अन्य लोगो ने एक भारतीय खेल माना है। यही से १८७३ मे यह खेल इग्लैण्ड पहुँचा और वहाँ 'बैडमिंटन' नाम की स्टेट मे इसका सर्वप्रथम प्रचार हुआ। इसी आधार पर इस खेल का नाम 'बैडमिंटन' पड़ गया।

'डालर' शब्द भी मूलत: एक स्थान के नाम पर आधारित है। १६वी सदी मे बोहेमिया की एक घाटी मे चाँदी के सिक्के बनते थे। उस घाटी का नाम Jochim था। जर्मन भाषा मे घाटी के लिए Thal शब्द है। इसी आधार पर उस घाटी को Jochimsthal कहते थे। यहाँ बननेवाले सिक्के भी बाद मे इसी नाम से पुकारे जाने लगे। आगे चलकर Jochimsthal शब्द ही छोटा और परिवर्तित होकर Thaler हो गया जो डच मे daler तथा अंग्रेज़ी मे 'डॉलर' है।

फ्रास के एक कस्बे का नाम Papalina है, जहाँ सबसे पहले 'पॉपलिन' कपडा बना, और उसी स्थान के नाम के आधार पर इस कपडे को 'पॉपलिन' कहने लगे।

दृश्यात्मक समानता

बहुत-से शब्द देखने की या रूपात्मक समानता के आधार पर भी बन जाते है। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी (तथा हिन्दी आदि) का शब्द है 'ऑमलेट'। वस्तुत यह शब्द फ्रासीसी भाषा का allemett है, जिसका मूल अर्थ है 'पतला पत्तर'। ऑमलेट भी पतले पत्तर-जैसा होता है, अतः उसे इस नाम से पुकारा गया है। एक दूसरा शब्द 'पेंसिल' भी इसी प्रकार का है। मूलत यह शब्द लैटिन का penicılum है जिसका अर्थ है 'छोटी पूँछ'। पहले छोटे पतले ब्रश से लिखा जाता था जो देखने मे छोटी पूंछ की तरह का होता था, अत उसे penıcılum कहा जाता था। बाद मे उनका काम पेंसिल से लिया जाने लगा तो इसे भी उसी नाम से पुकारा जाने लगा, यद्यपि आधुनिक पेंसिल छोटी पूँछ-जैसी बिल्कुल नही होती। 'ज़ेब्रा पारपथ' (Zebra Crossıng) तथा 'खरगोशी ऊन' (Rabbıt wool) भी इसी प्रकार बने शब्द है।

गुण या विशेषता के आधार पर

सभी भाषाओ के बहुत सारे शब्द इस आधार पर बने होते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी का शब्द 'बावर्ची' ले। फ़ारसी 'बावर' का अर्थ है 'विश्वास' और 'ची' प्रत्यय का अर्थ है 'वाला'। इस तरह 'बावर्ची' का अर्थ है 'विश्वासपात्र'। मध्ययुग में बादशाहो के रसोईघर के प्रबन्धक को 'बावर्ची' कहते थे। बादशाह के अत्यन्त विश्वासपात्र व्यक्ति की नियुक्ति ही इस पद पर होती थी, जिसका पूरा विश्वास हो ताकि खाने मे जहर आदि न मिलाया जा सके। बाद मे रसोई बनानेवाले को भी बावर्ची कहने लगे, क्योंकि उसका भी विश्वासपात्र होना उतना ही जरूरी है, खास तौर पर वहाँ जहाँ एक ही व्यक्ति रसोई की व्यवस्था भी करें तथा खाना भी बनाये। ऐसे ही 'कॉफ़ी' शब्द मूलतः अरबी 'कहव.,' तुर्की 'कहवे', इतालवी Caffe, फ्रासीसी Cafe, अंग्रेज़ी Coffee रूप में विकसित हैं। अरबी 'कहव' का मूल अर्थ है 'नशा करनेवाली चीज़'। हलका नशा लानेवाले प्रभाव के कारण इस पौधे तथा इसके बीज को

'कह्व.' कहा गया था। कापी (मूल शब्द लैटिन Copia जिसका अर्थ आधिक्य है; अंग्रेजी Copious मे यह अर्थ आज भी सुरक्षित है; कापियो मे कागज के पन्नो के आधिक्य के कारण यह नाम पडा), पिआनो (मूलत: इतालवी शब्द Pianoe-frorte जिसका अर्थ 'कोमल और ऊँचा' होता है। पिआनो की आवाज की इस विशेषता के कारण ही यह नाम पडा है) वगैरह अन्य भी अनेक शब्द इसी आधार पर बने हैं। यही स्थिति दिनकर, प्रभाकर, विभाकर, क्षपाकर, रत्नाकर आदि की भी है।

हाथी (हाथवाला जानवर, 'हाथ' अर्थात् सूँड), करी [कर (सूँड) वाला जानवर), द्विरद (दो दाँतवाला, हाथी), केशरी (गर्दन पर केश वाला), चौपाई, चारपाई, तिपाई, तिराहा, चौराहा जैसे शब्द भी किसी-न-किसी प्रकार की विशेषता के आधार पर ही बने हैं।

मूल्य

कभी-कभी मूल्य के आधार पर भी शब्द बन जाते हैं। गजट (राजपत्र) का मूल इतालियन शब्द 'गज़ेटा' है। 'गज़ेटा' सोलहवी सदी में वेनिस सरकार का सबसे छोटा सिक्का था। उस समय सरकारी विज्ञप्तियाँ एक कागज पर लिखकर सुनायी जाती थी, और सुननेवालों से एक 'गजेटा' फीस ली जाती थी। इसी आधार पर सरकारी विज्ञप्ति-युक्त उस कागज या राजपत्र को 'गजेटा' कहने लगे और यही शब्द अंग्रेजी मे आकर 'गजट' हो गया। 'वह आदमी दो कौडी का है' मे 'दो कौडी का' (बेकार, व्यर्थ का) का अर्थ है 'जो दो कौडी में खरीदा जा सके'। कहना न होगा कि पहले कौडी भी भारतीय मूल्य-प्रणाली में एक प्रकार से सबसे छोटा सिक्का था। यह अभिव्यक्ति उसी पर आधारित है। अमूल्य, मूल्यवान, बेशकीमत शब्द भी इसी श्रेणी के हैं। इंग्लैण्ड में कभी बोलचाल मे एक प्रयोग चलता रहा है 'टु स्पेंड अ पेनि' (to spend a penny) जिसका अर्थ रहा है 'पाखाने जाना'। इस अभिव्यक्ति का आधार यह है कि वहाँ 'जनता-शौचालय' में जाने की फ़ीस कभी एक 'पेनी' थी।

सक्षेप

कुछ शब्द सक्षेप के आधार पर भी बन जाते है। उदाहरण के लिए, संविद (सयुक्त विधायक दल), नाटो (North Atlantic Treaty Organisation), जीप (Vohicle for General Purpose, G.P. =जीप), रडार (Radio Detection and Ranging), नकेनवाद (नलिनविलोचन शर्मा, केसरीकुमार, नरेश =नकेन), मिग (Mikoyan तथा Gurevich ने मिलकर इसे बनाया)।

संख्या

कुछ शब्द सख्याओं के आधार पर भी बन जाते हैं। भारतीय दण्ड विधान मे ४२० नम्बर की धारा धोखा देनेवाले अपराधियो पर लगायी जाती है। इसी आधार पर हिन्दी मे 'चार सौ बीस' शब्द चल पडा है जिसका अर्थ है 'धोखेबाज़'। इसी आधार पर 'चार सौ बीसी' शब्द 'धोखेबाज़ी' के लिए चलता है। 'वह आदमी तो दसनम्बरी है' मे 'दसनम्बरी' भी इसी प्रकार सख्या पर आधारित शब्द है। 'दसनम्बरी' का अर्थ होता है 'भारतीय दण्ड सहिता की ११० नम्बर की धारा जिस पर लगे'। यह धारा उस पर लगती है जो जनता की निगाह मे बुरा हो। साठ वर्ष का होने पर बुद्धि मन्द पड जाती है या व्यक्ति का चिन्तन कुण्ठित हो जाता है। इसी कारण नौकरी से हटाये जाने की उम्र साठ या उसके आस-पास रही है। इसी 'साठ' से हिन्दी मे शब्द बना है 'सठियाना'। 'वह सठिया गया है' वाक्य का अर्थ है 'वह व्यक्ति साठ वर्ष का हो जाने के कारण अपने सोचने-समझने या व्यवहार आदि मे असामान्य (बुरे अर्थ में) हो गया है या कुछ पगला-सा गया है'। कभी-कभी 'सठियाने' का प्रयोग 'भ्रष्ट होने' के अर्थ मे भी होता है : 'उसकी अक्ल तो सठिया गयी है'। उर्दू मे एक मुहावरा चलता है 'सतरा-बहतरा होना'। इसका सम्बन्ध ७०-७२ की उम्र से है। इस मुहावरे का भी वही अर्थ है जो 'सठियाने' का है। ऐसे ही प्रत्येक भारतीय थाने मे एक रजिस्टर होता है जो 'रजिस्टर नम्बर आठ' कहलाता है। थाने के रजिस्टरो मे आठवे नम्बर का होने के कारण इसे

यह नाम मिला है। इसमे उस थाने के क्षेत्र के अपराधियो के नाम दर्ज रहते है। इसी आधार पर अपराधियो के लिए 'नम्बर आठ' या 'आठ नम्बरी' का प्रयोग चलता है। इसी को संक्षेप मे 'नम्बरी' (नम्बरी चोर, नम्बरी बदमाश) भी कहते है।

प्रयोग

बहुत-से शब्द प्रयोग के आधार पर बनते है। 'सुमिरनी' नाम माला का इसलिए है कि उसका प्रयोग भगवान का 'सुमिरन' करने के लिए होता है। 'रबर' का प्रयोग रगडकर लिखा मिटाने के लिए होता था, अतः अग्रेज़ी रब (Rub=रगडना) के आधार पर उसे 'रबर' नाम दिया गया। भोजपुरी मे खाने की तम्बाकू को 'खइनी' (=जो खायी जाये) कहते हैं।

जिससे बनायें वह मूल वस्तु

जिस चीज़ से कोई चीज़ बनती है, कभी-कभी उसका नामकरण उसी के आधार पर कर देते हैं। पेड-विशेष की भीतरी छाल को ग्रीक मे 'बिबलास' कहते है। यह छाल लिखने के काम आती थी। अत: इस पर लिखी गयी किताब ग्रीक मे 'बिबिलिया' कहलायी। 'बाइबिल' शब्द इसी से बना है। अग्रेज़ी शब्द 'बिबिलियोग्राफी' (पुस्तक-सूची) भी इसी से सम्बद्ध है।

'पेन' (कलम) का सम्बन्ध लैटिन Penna से है, जिसका अर्थ 'पंख' होता है। पहले पेन (कलम), पेना (पख) की बनती थी, अत: 'पेना' कहलायी। यह 'पेना' शब्द बाद मे 'पेन' हो गया, तथा लोहे, लकडी आदि की कलम भी इसी नाम (पेन) से पुकारी जाने लगी।

'अफीम' शब्द मूलतः यूनानी शब्द ओपिअन (Opion) है जिसका अर्थ 'पोस्ते का रस' है। अफीम इसी से बनने के कारण यूनानी मे 'ओपिअन' कहलायी और यही शब्द विभिन्न भाषाओं मे ओपियम, अफ़्यून, अफीम आदि हो गया।

कुटज (कुट अर्थात् तृण से जन्मा या बना, अर्थात् झोपडी), गिलास

(मूलत गिलास 'ग्लास' अर्थात् शीशे के होते थे), शीशा (=आइना, शीशे से बनने के कारण) आदि अनेक अन्य शब्द भी इस प्रकार के है।

अन्धविश्वास

बहुत-से शब्द अन्धविश्वास के आधार पर जन्म लेते हैं। उदाहरण के लिए अब तो हम जानते है कि चॉद का काला धब्बा उसकी सतह पर के गडढे आदि है किन्तु प्राचीन भारतीयो मे यह अन्धविश्वास था कि वह मृग या हिरन है। इसी आधार पर संस्कृत मे चाँद के लिए 'मृगाक' तथा 'हरिणाक' (जिसके अंक या गोद मे मृग या हिरन हो) शब्दो का प्रयोग हुआ है। ऐसे ही लोगो का विश्वास है कि कौवे के एक आँख होती है। वही ऑख कभी एक अक्षगोलक मे आ जाती है तो कभी दूसरे मे। इसी आधार पर सस्कृत मे 'कौवा' के लिए एक शब्द 'एकाक्ष' प्रयुक्त होता है।

अशोक (वृक्ष) के लिए सस्कृत मे एक शब्द आता है 'वामाघ्रिघातन' जिसका शब्दार्थ है 'युवती (वामा) के चरण (अघ्रि) से मारा जाने वाला'। पुराना अन्धविश्वास है कि युवती जब अशोक वृक्ष को अपने पैरो से मारती है तो वह पुष्पित हो उठता है। इसी प्रकार लोगो का विश्वास है कि चातक केवल स्वाति नक्षत्र मे बरसनेवाले पानी का पान करता है। इसी आधार पर 'चातक' का एक पर्याय 'स्वातिजीवन' है। उसके लिए एक दूसरा शब्द 'मेघजीवन' भी मिलता है जिसके पीछे भी यही अन्धविश्वास है, अर्थात् चातक केवल स्वाति नक्षत्र के बादल का बरसा पानी ही पीता है।

एक पुराना अन्धविश्वास है कि स्वाती की बूँद ही सीप मे गिरकर मोती, साँप के मुँह मे पडकर जहर तथा केले के पेड में कपूर बनती है। इसी आधार पर 'कपूर' के अन्य नाम 'घनसार' तथा 'मेघसार' है। चक्षु-श्रवा (=सर्प; जो आँख से सुने), सुधाकर (चाँद; अमृत का भण्डार, सुधानिधि, सुधारश्मि, अमृताशु आदि भी), तथा काकपाली (=कोयल, कहा जाता है कि कोयल अपने अण्डे को कौए के घोसले मे रख आती है तथा कौआ ही उसे सेता और पालता है; काकसुता भी) आदि शब्द भी

इसी श्रेणी के है।

स्वाद

अमरीका के आदिवासियो की भाषा मे एक शब्द है 'चाकोलट्ल' जिसका अर्थ है 'कडवा पानी'। पहले जो 'चाकलेट' बनता था 'कडवे पानी' की तरह कड़वा होता था, अत 'चाकोलट्ल' कहा जाने लगा। 'चाकलेट' उसी शब्द का ध्वन्यात्मक विकास है। इस प्रकार कुछ शब्द स्वाद के आधार पर भी बन जाते है।

बनाने की प्रक्रिया

कभी-कभी बनाने की प्रक्रिया के आधार पर भी शब्द बन जाते हैं। उदाहरण के लिए, 'जेब' शब्द का मूल अर्थ है 'जो काटकर बनाया जाये'। काटकर बनाये जाने के कारण ही जेब नाम पडा। पहले जो जेबे बनती थी उनका मुँह कपडे मे काटकर छेद करके बनाया जाता था। 'टोस्ट' भी इसी प्रकार का शब्द है। इसका सम्बन्ध लैटिन धातु torreve से है जिसका अर्थ है 'सेंकना'; अर्थात् 'टोस्ट' वह है जो सेका जाये या सेंककर बनाया जाये। ऐसे ही 'ग्रन्थ' धातु का अर्थ है 'गूंथना' या बाँधना। 'ग्रन्थ' नाम कागज या पन्नो को गूंथ या बाँधकर बनाने के कारण पडा है।

रंग

कुछ शब्द रग के आधार पर भी बन जाते है। 'नाग' का अर्थ है 'सिन्दूर'। सिन्दूर के रंग का होने के कारण सन्तरे को सस्कृत मे 'नागरगक' या 'नागरंगिका' कहा गया, जिसका विकसित रूप 'नारगी' है। पाण्डु-लिपि शब्द भी इसी प्रकार का है। 'पाण्डु' का अर्थ है 'सफेद'। कभी अपने यहाँ धरती या पट्टी पर सफेद खरिया से लिखते थे और उसे लिपि सफ़ेद होने के कारण पाण्डुलिपि कहते थे। यही शब्द फिर मसविदा, दस्तावेज और बाद में हस्तलिखित ग्रन्थ के लिए रूढ हो गया। स्याही (पहले स्याही केवल स्याह अर्थात् काली होती थी), सब्जी (मुख्यतः

सब्ज़ अर्थात् हरी होती है), पीलिया (पीला से) आदि शब्द भी इसी श्रेणी के है।

कोई कहानी

कभी-कभी कुछ कहानियो के आधार पर भी शब्द बन जाते है। कहा जाता है कि एक बहुत कजूस आदमी एक कटोरी मे घी लेकर कही जा रहा था। घी मे एक मक्खी पड गयी। मक्खी निकालकर वह फेंकना चाहता था तब तक उसे ध्यान आया कि मक्खी के पंख-पैर मे घी लगा है। उसने अपना वह थोडा-सा घी भी न जाने देने के लिए पहले मक्खी मुँह मे डालकर चूसा और तब कही उसे ज़मीन पर फेंका। यह बात कोई व्यक्ति देख रहा था। वह बोल उठा—मक्खीचूस। और धीरे-धीरे कजूस के लिए यह शब्द चल पड़ा।

इस प्रकार अनेकानेक आधारों पर शब्द बनते रहे हैं, जनमते रहे है, बन रहे है, जनम रहे है, तथा बनते रहेगे, जनमते रहेगे।

२ : : शब्द बढ़ते हैं

आदमी जनमता है और बढता है, तो फिर शब्द ही क्यो पीछे रहे ? वे भी जनमते हैं, और बढते हैं। किन्तु एक अन्तर है। हर आदमी जो जनमता है, बढता है, किन्तु हर शब्द जो जनमता है, बढता नही। यह वृद्धि केवल कुछ थोडे ही शब्दो मे होती है। एक उदाहरण ले। अंग्रेज़ी में शब्द है 'प्लेटो' जो हिन्दी मे 'प्लेटो' के अतिरिक्त 'अफ़लातून' रूप मे मिलता है। प्रयोग चलते हैं . 'वह तो अफलातून है'; 'वह तो अपने-आपको अफलातून का नाती समझता है'। वस्तुतः हुआ यह कि मूल यूनानी शब्द 'प्लातोन' है जो अंग्रेज़ी में 'प्लेटो' हो गया किन्तु अरबी, फारसी आदि मे यही 'अफलातून' हो गया। अर्थात् 'प्लातोन' शब्द अरबी, फारसी, हिन्दी, उर्दू आदि में लम्बाई मे बढ़कर 'अफ़लातून' हो गया : 'प्लातोन' से 'अफलातून'।

भाषावैज्ञानिक दृष्टि से यह वृद्धि ध्वनि-आगम के कारण होती है। आगम, अर्थात् किसी ऐसी अतिरिक्त ध्वनि का उस शब्द मे आ जाना जो पहले से नही है। जैसे 'दवा' से 'दवाई'। यहाँ हम देखते हैं कि 'ई' के आ जाने से 'दवाई' शब्द 'दवा' से बडा हो गया है।

यह आगम कई प्रकार का हो सकता है —

१ **आदि स्वरागम**—इसमे कोई स्वर शब्द के आदि में आ जाता है, और उसकी लम्बाई इस अतिरिक्त ध्वनि के आने के कारण बढ जाती

है । उदाहरण है . 'स्कूल' 'स्टेशन', 'स्प्रिंग' आदि शब्दो को हिन्दी के पूर्वी प्रदेशो मे 'इस्कूल', 'इस्टेशन . 'इस्प्रिंग' रूप मे बोलते हैं । अर्थात् 'इ' का आगम हो गया है । 'प्लातोन' (प्लेटो) से 'अफलातून', 'स्तबल' से 'अस्तबल', 'सवारी' से 'असवारी', 'कलंक' से 'अकलक' (भोजपुरी) मे भी यही बात है ।

२ **मध्य स्वरागम**—'स्कूल', 'स्टेशन', 'स्प्रिंग' को पंजाबी लोग 'अ' का मध्य आगम करके 'सकूल', 'सटेशन' तथा 'सप्रिंग' कहते है । 'गर्म' का 'गरम', 'भक्त' का 'भगत,' 'हुक्म' का हुकुम,' 'बर्फ' का 'बरफ' आदि इसी प्रकार के उदाहरण है, जिनमे मध्य मे किसी स्वर के आने से शब्द भी बडे हो गये है ।

३. **अन्त्य स्वरागम**—इसके उदाहरण बहुत कम है : 'दवा' से 'दवाई,' तथा 'पत्र' से भोजपुरी मे 'पतई' आदि ।

४ **आदि व्यंजनागम**—कभी-कभी शब्द के आदि मे व्यंजन आने से भी किसी शब्द की लम्बाई बढ जाती है । जैसे 'ओठ' (स० ओष्ठ) से 'होठ,' 'असलि' से 'हँसली' तथा 'उलास' (स० उल्लास) से 'हुलास' आदि ।

५. **मध्य व्यंजनागम**—'टालटूल' से 'टालमटोल,' स० 'पण' से हि० 'प्रण,' 'लाश' से 'लहास' (भोज०), 'सु+नर' से 'सुन्दर,' सु+नरी से 'सुन्दरी,' 'हमेशा' से भोजपुरी 'हरमेसा,' 'सुख' से 'सुक्ख,' 'रखा' से 'रक्खा', 'पसन्द' से अवधी 'परसन्द', 'समुद्र' से 'समुन्दर,' 'जेल' से भोजपुरी 'जेहल' आदि ।

६. **अन्त्य व्यंजनागम**—'भौ' (स० भ्रू) से 'भौह' (भौंहें), 'उमरा' (अर०) से 'उमराव' तथा 'परवा' (फा०) से 'परवाह' (भोज०) आदि ।

शब्दो के बढ़ने के कुछ उदाहरणो को यहाँ कुछ विस्तार से लिया जा सकता है ।

संस्कृत मे शब्द है 'गुजा,' किन्तु यही शब्द बढकर हिन्दी की एक बोली भोजपुरी मे 'घुँगुची' हो गया है । 'मिश्र' (ब्राह्मणों के नामो के साथ प्रयुक्त) ब्रजभाषा के कुछ क्षेत्रो मे 'मिसुर' बोला जाता है, अर्थात् 'उ' के घुस आने से शब्द की लम्बाई बढ़ गयी है ।

अचार या मुरब्बा आदि रखने के बर्तन को हिन्दी प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रो मे 'मर्तबान,' 'म्रितबान,' 'अमरितबान' या 'मिरितबान' आदि कहते है। बहुत-से लोग सस्कृत 'मृद्भाण्ड' से इसे जोडते हैं किन्तु मूलतः यह शब्द अरबी शब्द 'मर्तबान' है। स्पष्ट ही 'मर्तबान' की तुलना में अमरितबान, मिरितबान, अमृतबान आदि बढ़े हुए शब्द हैं।

रामचरितमानस मे आता है—

कहहिं सुसेवक बारहिं बारा।
होइअ नाथ अस्व असवारा॥

यह 'असवारा' या 'असवार' मूलत फारसी का 'सवार' शब्द है जो 'अ' के आ जाने से बड़ा हो गया है। अवधी, भोजपुरी आदि मे 'सवारी' के स्थान पर प्रचलित शब्द 'असवारी' मे भी यही बात है।

जिसे हम 'तन्दूर' कहते है, मूलत. फारसी का 'तनूर' है। 'द' के घुस आने से यह 'तन्दूर' हो गया है।

सस्कृत मे मूल शब्द 'शाप' ('अभिशाप' मे भी यही है) है। हिन्दी मे यह 'श्राप' हो गया है। अर्थात् 'र' के आ जाने से थोडा बडा हो गया है, किन्तु भोजपुरी, अवधी, मगही आदि बोलियो मे यह 'सराप' रूप मे और भी बडा हो गया है। इन बोलियो मे 'सरापना' क्रिया भी प्रयुक्त होती है।

शब्दो को बढाने की यह प्रवृत्ति क्षेत्रीय आधार पर कई प्रकार की होती है। पजाबी लोग शब्द के बीच मे स्वर लाकर शब्द को बडा कर लेते है। जैसे 'स्टेशन' का 'सटेशन', 'स्पष्ट' का 'सपष्ट,' 'स्प्रिग' का 'सप्रिंग' तथा 'स्कूल' का 'सकूल' आदि। ब्रज, अवधी, भोजपुरी क्षेत्रों मे ऐसे शब्दो मे प्रारम्भ मे स्वर के आने से शब्द बडा हो जाता है : 'इस्नेह', 'इस्टेशन,' 'अस्नान,' 'इस्कूल,' 'अस्पष्ट,' 'ईस्प्रिग,' 'अस्तुति,' 'इस्तुति,' 'अस्तोत्र,' 'इस्तोत्र' आदि।

संस्कृत का 'प्रबल' कबीर मे 'अपरबल' रूप मे बडा हुआ मिलता है—

पानी माहीं परजली भई अपरबल आगि।
बहती सरिता रह गयी मच्छ रहे जल त्यागि।

संस्कृत के 'पत्र' शब्द ने तो बढकर किसी मायावी राक्षस की तरह अनेक रूप धारण कर लिये हैं . 'पत्तर' (चाँदी, सोने आदि का), 'पत्तल' (पत्तो का बना), 'पतला' (मूल अर्थ पत्ते जैसा पतला)।

संस्कृत का 'अक्षोट' शब्द पश्तो भाषा मे पहुँचा तो बडा होकर 'अखरोट' हो गया। वहाँ से लौटकर फिर यही बढा हुआ शब्द हिन्दी-उर्दू आदि मे प्रचलित हो गया।

'सिकन्दर' व्यक्ति तो बडा था ही, शब्द भी बडा होकर 'इसकन्दर' हो गया। जायसी पदमावत मे लिखते हैं—

इसकन्दर जुलकरन जो कीन्हा।

'कृष्ण' का पदमावत मे प्रयुक्त 'किरिसुन' रूप भी इसी प्रकार का है—

किरिसुन करा चढा ओहि माँथे।
तब सो छूट अब छूट न नाथे।

अरबी शब्द 'अमीर' का बहुवचन 'उमरा' सूरदास मे 'उमराव' रूप मे है—

महा महा जो सुभट दैत्य बल बैठे सब उमराव।

संस्कृत का शब्द 'व्यर्थ' जायसी मे 'अँबिरिथा' रूप मे बढा हुआ मिलता है—

पेम क आगि जरै जउ कोई।
ताकर दुख न अँबिरिथा होई।

हिन्दी की सभी बोलियो में इस प्रकार के बढे हुए शब्दो की भरमार है। जैसे कृपा का 'किरिपा,' 'क्रिया' का 'किरिया', 'वेश्या' का 'बेसवा', 'आलसी' का 'आलकसी', 'जेल' का 'जेहल', 'लाश' का 'लहास', 'बला' का 'बलाय', 'चील' का 'चील्ह', 'हमेशा' का 'हरमेसा', 'डेढा' का 'डेवढा', 'कल' का 'काल्ह' आदि। किन्तु इसका आशय यह नही कि परिनिष्ठित हिन्दी मे ऐसे शब्द नही हैं। 'खल' का 'खरल', 'पण' का 'प्रण', 'शाप' का 'श्राप', 'जन्म' का 'जनम', 'पूर्व' का 'पूरब', 'सूर्य' का 'सूरज' जैसे अनेक बढे हुए शब्द परिनिष्ठित भाषा के प्रयोग मे भी हैं।

३ : शब्द उलटते हैं

बच्चे जनमने के कुछ ही दिनों बाद थोड़ा बड़ा होते ही उलटने-पलटने लगते हैं। शब्द भी उनसे पीछे नहीं हैं। ये भी उलटते-पलटते है। 'लखनऊ' को बहुत-से लोग 'नखलऊ' कहते है। कहना न होगा कि 'लखनऊ' शब्द के 'ल' और 'न' के उलटने-पलटने के कारण 'लखनऊ' का 'नखलऊ' हो गया है। हुआ यह है कि 'ल' ने 'न' का और 'न' ने 'ल' का स्थान ले लिया है। यह उलटना-पलटना या उलट-फेर शब्दों मे प्राय. होता है। बहुत-से पजाबी 'चाकू' को 'काचू' तथा 'कीचड़' को 'चीकड़' कहते हैं।

भाषाविज्ञान की तकनीकी भाषा मे ध्वनियो के इस परिवर्तन को 'विपर्यय' या 'ध्वनि-विपर्यय' कहते हैं। विपर्यय मुख्यतः दो प्रकार का होता है

१. **पार्श्ववर्ती विपर्यय**—इसमें पास-पास की ध्वनियाँ एक-दूसरे के स्थान पर आ जाती हैं। सस्कृत 'चिह्न' हिन्दी मे बहुत-से लोगो द्वारा 'चिन्ह' रूप मे प्रयोग होता है। इसी प्रकार 'ब्राह्मण' का 'ब्राम्हण', 'ब्रह्म' का 'ब्रम्ह' तथा 'ब्रह्मा' का 'ब्रम्हा' आदि।

२. **दूरवर्ती विपर्यय**—इसमे जो ध्वनियाँ एक-दूसरे के स्थान पर आ जाती हैं, वे पास-पास न होकर दूर-दूर होती हैं। जैसे 'लखनऊ' से 'नखलऊ' मे 'ख' तो अपने स्थान पर ज्यो-का-त्यो है, किन्तु उसके पूर्व और बाद

के 'ल' तथा 'न' ने एक-दूसरे का स्थान ले लिया है। 'अनुमान' का 'उन-मान' (मध्यकालीन हिन्दी) या 'पहुँचना' का 'चहुँपना' (भोजपुरी) में भी यही बात है।

आगे स्वर, व्यंजन तथा अक्षर (स्वर तथा व्यंजन का सम्मिलित रूप) के आधार पर इसके और भी उपभेद किये जा सकते हैं।

अनपढ जनता द्वारा प्रयुक्त भाषा में इस प्रकार के परिवर्तन की प्रवृत्ति बहुत ज्यादा है। उदाहरण के लिए हिन्दी की बोलियों में इसके अनेक उदा-हरण मिलते हैं। जैसे 'जानवर' से 'जनावर', 'अमरूद' से 'अरमूद', 'टटका' से 'टाटक', 'फाटक' से 'फटका', 'उकसाना' से 'उसकाना', 'कचहरी' से 'कहचरी', 'पहुँचना' से 'चहुँपना', 'परिधान' से 'पहिरन', 'बुकच.' से 'बकुचा', 'गुरुड' से 'गडुर', 'नजदीक' से 'नगीच', 'तरोई' से 'तोरई' या 'तोरी', 'उल्का' से 'लुक्क', 'घुटना' से 'ठेंघुंना', 'इष्टका' से 'इकटा', 'रिक्शा' से 'रिस्का', 'आदमी' से 'अमदी', 'बक्स' से 'बसक', 'नुकसान' से 'नसकान', 'नुसखा' से 'नुख्सा', 'यहाँ' से 'हियाँ', 'रूमाल' से 'उरमाल', 'ससुर' से 'सुसर', 'निरादर' से 'निदरना', 'बीमार' से 'बेराम', 'बीमारी' से 'बेरामी', 'चिकुर' से 'चिरकी' (शिखा), 'इलजाम' से 'इजलाम', 'कराहना' से 'कहरना', 'मुजरिम' से 'मुलजिम', 'कुफ्ल' से 'कुलुफ', 'वोढ' से 'ढोव', 'लघु+क' से 'हलुक', 'बिन्दु' से 'बूँदी', 'इक्षु' से 'उखि' तथा 'एरंड' से 'रेंडी' आदि। इनमें से कुछ को तो साहित्य मे भी देखा जा सकता है।

लूक (सं० उल्का)

आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिन ही **लूक** परन बिधि लागे।

—तुलसी

निदरना (सं० निरादर)

एक-एक जीतहिं ससारा। उनहिं निदरि पावत को पारा।

—सबलसिंह

कहरना (हिन्दी कराहना)

श्रीपति सुकवि यों वियोगी **कहरन** लागे,
मदन की आगि लहरन लागी तन में।

—श्रीपति

कुलुफ (अर० कुफ़्ल=ताला)

कज्जल कुलुफ मेलि मदिर मे पलक सदुक पट अटकै।

—सूर

हरुअ—अलुक (सं० लघु+क)

कोई हरुअ जानु रथ हाँका।

—जायसी

विपर्यय या शब्दो का उलटना एक अशुद्धि है और अशास्त्रीय है, पर दु:ख है कि बाबा विश्वनाथ की नगरी काशी का प्रसिद्ध नाम 'बनारस' भी इस अशुद्धि का शिकार हो चुका है। 'वरुणा' और 'असी' की सीमा के बीच बसने के कारण काशी का नाम 'वाराणसी' पड़ा था। 'वाराणसी' शब्द विकसित होकर या बिगड़कर आज 'बनारस' हो गया है। यदि हम ध्यान दें तो 'व' का 'ब' तथा 'ण' का 'न' होने से 'बारानसी' या 'बरानस' शब्द बनना चाहिए था, पर शब्द 'बरानस' न बनकर 'बनारस' बना। इसका रहस्य यह है कि यहाँ भी विपर्यय महाराज घुस आये और 'र' के स्थान पर 'न' तथा 'न' के स्थान पर 'र' करके शब्द को उलट-पुलटकर 'बनारस' बना दिया। देव-भाषा सस्कृत, शास्त्रीयता तथा पाण्डित्य के केन्द्रस्थल को भी इस अशुद्धि से न बचते देखकर बडा आश्चर्य होता है। सस्कृत के स्थान पर ग्रामीण भाषा अवधी मे 'रामचरित मानस' लिखने के कारण बनारस के जिन पण्डितो ने तुलसी का इतना विरोध किया था, भला उन्होंने अपनी पुनीत नगरी के नाम मे इतनी बड़ी अशुद्धि कैसे बरदाश्त की, यह समझ नही आता। शायद शब्दो के उलटने या विपर्यित होने की शक्ति इतनी अतुल है कि पण्डितो का पाण्डित्य उसे परास्त न कर सका।

स्वयं संस्कृत भाषा भी इस अशुद्धि या दोष से अछूती नही है। 'हिंस' का अर्थ होता है 'हिंसा करना' और इसी से 'सिंह' बना है। कहना न होगा कि यहाँ भी शब्द उलट गया है। 'आवाहन' और 'आह्वान' दोनों शुद्ध संस्कृत शब्द हैं और दोनो का अर्थ भी एक ही है। यथार्थतः यहाँ 'आह्वान' शब्द तो शुद्ध है पर 'आवाहन' उसका विपर्ययग्रस्त रूप है। यह उलट बहुत पहले हो गयी थी और विपर्ययग्रस्त रूप भी प्रचलित

हो गया था, अत वैयाकरणो एव कोषकारो को भी विपर्यय की शक्ति के आगे सिर झुकाकर इस अशुद्ध रूप को शुद्ध मान अपने ग्रन्थो मे स्थान देना पडा।

'खन्' एक संस्कृत धातु है जिसका अर्थ 'खोदना' होता है। प्रारम्भ में सम्भवत: मनुष्य नाखून से ही जमीन खोदता था और इसी कारण नाखून को 'नख' की सज्ञा दी। यह 'नख' शब्द 'खन्' के विपर्यय से ही बना है।

'नारिकेल' और 'नालिकेर' मे भी यही बात है। आप्टे आदि के प्रामाणिक कोषो मे इन दोनो को शुद्ध संस्कृत शब्द के रूप मे दिया गया है, किन्तु तथ्य यह है कि शुद्ध और प्राचीन शब्द 'नारिकेल' है और 'नालिकेर' उसका विपर्ययग्रस्त, उलटा, या अशुद्ध रूप है। यह रूप भी काफी प्राचीन है, अत. 'आवाहन' की भाँति इसे भी स्थान देना पडा है।

आज की साहित्यिक हिन्दी तथा उर्दू मे भी इस प्रकार के बहुत-से उदाहरण मिलते हैं। सस्कृत मे 'वारि' देनेवाला होने के कारण बादल का नाम 'वारिद' था। इसमे 'व' का 'ब' तथा 'र' का 'ल' होने से एव 'द' और 'ल' मे उलट-फेर होने से 'वारिद' का हिन्दी मे 'बादल' हो गया। इसी प्रकार 'अंगुलि' से 'उँगली', 'पत्र' (पत्र) का 'परत', 'तिलक' का 'टिकुली,' 'चक्र' से 'चरखा', 'चत्वार' का 'चबूतरा', 'बिडाल' का 'बिलार', 'सन्धि' का 'सेंध' तथा 'अम्लिका' का 'इमली' भी शब्दो मे विपर्यय के सुन्दर उदाहरण हैं। कुछ विपर्यय अस्पष्ट भी होते हैं। उदाहरणस्वरूप 'स्नान' से 'नहान', 'गृह' से 'घर', 'नग्न' से 'नंगा' तथा 'जिह्वा' से 'जीभ' विपर्यय ही हैं, यद्यपि स्पष्ट ज्ञात नही होते। पहले 'स्नान' को लीजिए। स्नान (स्नान) मे 'स' ध्वनि 'ह' मे परिवर्तित होकर बीच मे आ गयी है और प्रथम 'न' को उसके स्थान पर जाना पडा है; इस प्रकार 'स्नान' से विपर्ययग्रस्त रूप 'नहान' बना है। 'गृह' में 'ऋ' 'र' होकर अन्त में चला गया है और ग+ह=घ होकर 'घर' बना है। 'नग्न' में अन्तिम न के बीच मे आने से 'नगा' बन गया है। 'जिह्वा' में 'व' 'ब' होकर 'ह' के पूर्व आ गया है और ब+ह=भ होने से 'जीभ' हो गया है।

उर्दू के फलीता, तगमा, लहमा, मुचल्का तथा बर्फ आदि शब्द भी

विपर्ययग्रस्त है। इनके शुद्ध शब्द क्रमश. फतीलह, तमगा, लमहा, मुकल्चह, तथा बफ्र हैं। इनमे दो शब्दो (बर्फ़ तथा मुचल्का) का तो वे मौलवी भी प्रयोग करते है, जिनका शीन-काफ बहुत दुरुस्त है तथा जो हत्तुल-इमकान अशुद्ध शब्द नही बोलते। उन्हे क्या पता कि भाषा की कुछ स्वाभाविक अशुद्धियाँ जीवन मे इतना घर कर जाती हैं कि उनसे पीछा छुड़ाना कठिन ही नही अपितु असम्भव हो जाता है।

ग्रामीण तथा अशिक्षित लोगो की बोली मे उलटे-पुलटे या विपर्यय-ग्रस्त शब्दो की सख्या और भी बड़ी है। 'डूबना' आज का शुद्ध शब्द है, पर ग्रामीण बोलियो में 'बूडना' का प्रयोग चलता है। जायसी ने कई सौ वर्ष पूर्व लिखा था :

कुम्भकरन कइ खोपड़ी बूड़त बाँचा भीउँ।

इसका आशय यह है कि आज देहातो मे प्रचलित 'बूडना' शब्द ही अधिक प्राचीन है और 'डूबना' जो आज का साहित्यिक शब्द है, उसका विपर्ययग्रस्त रूप है।

अग्रेज़ी के भी बहुत-से शब्द भारत मे, विशेषत. ग्रामीण जनता में, विपर्ययग्रस्त हो गये हैं। 'सिगन्ल' से 'सिगल,' 'डेस्क' से 'डेक्स' तथा 'कनेक्शन' से 'कनस्कन' इसके अच्छे उदाहरण हैं। पर इसका बदला अंग्रेजो ने भी लिया है। अग्रेजो ने 'मथुरा' का 'मुत्रा,' 'जमुना' से 'जुमना' तथा 'देहली' से 'डेलही' कर दिया है। प्राचीन हिन्दी 'कछु' से आधुनिक हिन्दी 'कुछ' या 'खुरदा' से 'खुदरा' भी इसी प्रकार के उदा-हरण हैं।

विपर्यय या शब्दो के उलटने के एक विशेष प्रकार को अग्रेजी मे 'स्पूनरिज़्म' कहते हैं। आक्सफर्ड के प्रो॰ स्पूनर के नाम पर यह शब्द बना है। स्पूनर साहब से बोलने मे एक गलती प्रायः हो जाती थी। वे दो या अधिक शब्दो की आरम्भिक ध्वनियों मे उलट-फेर कर जाते थे। उदाहरणार्थ एक बार क्लास मे नाराज़ होकर उन्होने अपने छात्रो से कहा, you have tasted a whole worm. वस्तुत: वे कहना चाहते थे, you have wasted a whole term. ऐसे ही एक बार उन्होने दुकानदार से कहा, Give me a well-boiled icycl. वे कहना चाहते थे, give me a well-

oiled cycle. बदनाम अगर होगे तो क्या नाम न होगा ? तो स्पूनर साहब बदनाम तो हुए पर उसी बदनामी से उनका नाम 'स्पूनरिज्म' शब्द के माध्यम से अमर हो गया। हिन्दी मे इस प्रवृत्ति को आद्यशब्दाश विपर्यय कह सकते हैं। इसका शब्दो पर स्थायी प्रभाव नही पडता। हिन्दी मे एक कल्पित उदाहरण हो सकता है · 'आओ चर घलें' ('आओ घर चलें' के लिए)। वस्तुत बोलने की जल्दी मे मानसिक अव्यवस्था से यह हो जाता है, किन्तु इसकी प्रवृत्ति कुछ ही लोगों मे मिलती है।

तो, इस तरह हमने देखा कि शब्द भी उलटते हैं।

४ : : शब्द बोलते हैं

शब्दो के मुँह तो नही होता, किन्तु वे बोलते है। जी हाँ, बिना मुँह के बोलते है। किन्तु हॉ, सभी लोग उनकी आवाज़ नही सुन सकते। रेडियो-स्टेशनो से प्रसारित कार्यक्रमो को कर्णगत करने के लिए जिस प्रकार विशेष कान या रेडियो-सेट की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार शब्दो की बाते सुनने के लिए कुछ अध्ययन और उससे अधिक अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है। इस अभ्यास के बाद आप देखेगे कि शब्द बोलते ही नही, खूब बोलते हैं।

एक बात और । शब्दो का बोलना निरर्थक नही होता। वे आपको संस्कृति, इतिहास, समाज, धर्म तथा लोगो के विश्वास आदि से सम्बन्धित अनेक बाते बतलाते हैं। ऐसी-ऐसी बाते जो अन्यत्र नही मिल सकती। आप किसी पुस्तक या व्यक्ति की बात झूठी ठहरा सकते हैं, पर किसी शब्द द्वारा कही गयी बात को काटने या झूठी ठहराने की आपमे हिम्मत नही। यदि कोशिश भी करे तो कृतकार्य नही हो सकते, क्योंकि शब्द बेचारे झूठ बोलना जानते ही नही। आपके साथ रहकर भी वे आपकी इस बुराई से अछूते हैं। इसी कारण पूर्व-ऐतिहासिक काल की संस्कृति आदि के अध्ययन के लिए अब शब्दो का सहारा लिया जाने लगा है।

इसके अतिरिक्त शब्द आपको तरह-तरह की कहानियाँ सुनाकर आपका मनोरंजन भी करते हैं—किसी भी खेल-तमाशे से अधिक। यदि

आपने शब्दो से बात सुनना सीख लिया तो आप कभी भी एकाकीपन की मनहूसियत का अनुभव न करेंगे। आपके पास कोई व्यक्ति न हो, कोई मनोरंजन का साधन न हो, कोई पुस्तक न हो, श्राप शब्दो के ससार में प्रवेश कीजिए, वे आपका बराबर साथ देंगे। श्रापके लिए वे एक ही साथ व्यक्ति, पुस्तक और मनोरंजन का साधन सभी-कुछ बन जायेंगे। उनकी यह महत्ता, उदारता और परोपकारिता है।

शब्द बोलते तो सभी हैं, पर जिस प्रकार सभी व्यक्ति बात करने लायक नही होते और सभी पुस्तकें पढने योग्य नहीं होती, वैसे ही सभी शब्दो से बातें करना या उनका बोलना बहुत सार्थक नही होता। यहाँ कुछ चुने हुए शब्दो का बोलना हम लोग सुनेंगे।

सस्कृत का एक शब्द है **गोघ्न**। 'गोघ्न' का अर्थ 'अतिथि' होता है। अब जरा इसके धात्वर्थ पर ध्यान दीजिए। इसमें गो (गाय) और घ्न (मारना) दो शब्द हैं। 'पद्यचन्द्रकोष' मे इसका अर्थ है 'गौर्हन्यते यस्मै' अर्थात् जिसके लिए 'गौ' मारी जाती है। इस प्रकार यह शब्द आपसे बोल रहा है या कह रहा है कि प्राचीन काल में भारत में एक समय ऐसा भी था जब अतिथियो के स्वागत के लिए गाये मारी जाती थी। बाद के साहित्य मे गाय के लिए **अघ्न्या** शब्द मिलता है। 'अघ्न्या' का अर्थ है 'न मारने योग्य'। इन दोनो शब्दो द्वारा बतलायी गयी बातो के आधार पर लगता है कि पहले लोग गो-भक्षण करते थे और विशेषत. अतिथियो के आने पर उनका स्वागत 'गो-मास' से होता था। इसी कारण अतिथि का पर्याय 'गोघ्न' हुआ। पर, बाद मे खेती तथा दूध आदि की दृष्टि से उसे उपयोगी समझकर उसका वध बन्द किया गया और तब गाय का नाम 'अघ्न्या' पडा। स्वयं 'अघ्न्या' शब्द भी इसी ओर सकेत करता है कि गाय कभी 'घ्न्या' भी थी। इस प्रकार 'गोघ्न' और 'अघ्न्या' शब्द आपकी पुरानी सस्कृति के विषय मे बड़ी विचित्र बात बतलाते है। यो, इस बात के और भी प्रमाण मिलते है कि अतिथियो के सत्कार के लिए प्राय महोक्ष (बडे बैल) मारे जाते थे।[1] साथ ही विद्वान् पुत्र पाने

१. भारत की प्राचीन सस्कृति—डॉ० रामजी उपाध्याय, प्रथम सस्करण, पृ० ७०

के लिए लोग मांसौदन घी के साथ गाय या भेड का मास खाते थे।[1]

यह तो रही शब्दो मे सास्कृतिक इतिहास की बात। वस्तुओ के प्रयोग की दृष्टि से 'गेहूँ' के बहुत-से पर्यायो मे से 'गोधूम', 'बहुदुग्ध' तथा 'यवन-प्रिय' तीन शब्द लीजिए। 'गोधूम' (गो+धूम) शब्द सकेत करता है कि कभी गायो को गेहूँ के सूखे पौधो से धुआँ दिया जाता था। अब भी देहात मे पशुओ को मच्छर से बचाने के लिए सूखी घास या भूसे आदि का धुआँ देते हैं। 'बहुदुग्ध' शब्द बतलाता है कि शायद बाद में गायो को 'गोधूम' के हरे या सूखे पौधे चारे के रूप मे दिये जाने लगे और इससे उनके दूध मे वृद्धि हुई, अत. 'गोधूम' के अतिरिक्त इस पौधे को 'बहुदुग्ध' भी कहा जाने लगा। आगे चलकर आर्यों ने देखा कि यवन लोग इस पौधे के अन्न को खाते हैं और बड़े प्रेम से खाते हैं तो उन्होंने इसे 'यवनप्रिय' कहा। गेहूँ के 'यवनभोज्य' तथा 'म्लेच्छभोजन' नाम भी मिलते हैं, जो इस अनुमान की और भी पुष्टि करते हैं। बाद मे शायद 'यवनों' या 'म्लेच्छो' के ही अनुकरण पर आर्यों ने इसे खाना शुरू किया। खाद्यान्नों मे इसे देर से स्वीकृति मिली, इसीलिए आर्यों की पूजा आदि मे जो स्थान जव या चावल को है, इसे नही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन शब्दों ने आर्यों मे 'गेहूँ' के प्रयोग का पूरा इतिहास ही हमारे सामने स्पष्ट कर दिया।

कुछ शब्द हमारे पूर्वजों के विश्वास, अन्ध-विश्वास तथा उनके ज्ञान की सीमाओ को स्पष्ट कर देते हैं। पृथ्वी के कुछ पर्यायो को लीजिए। इसका एक प्राचीन नाम 'अचला' (न चलनेवाली) मिलता है। इसका आशय यह है कि एक समय—शायद आरम्भ से—आर्य लोग 'पृथ्वी' को स्थिर और न चलनेवाली मानते थे।[2] इसका दूसरा नाम 'गो' (जो चले) मिलता है। यह शब्द बतलाता है कि बाद मे लोग 'पृथ्वी' को 'अचला' के स्थान पर 'चला' मानने लगे अर्थात् पृथ्वी की गति का उन्हे पता चल

---

१. बृहदारण्यक उपनिषद्, ६-४-१८
२. पृथ्वी के निश्चला तथा स्थिरा नाम भी उसी काल के हैं और वे भी इसी बात की पुष्टि करते हैं।

गया । इस ज्ञान के बाद ही भारतीय ज्योतिष मे प्रगति प्रारम्भ हुई होगी। पृथ्वी का एक नाम 'मेदिनी' भी है। 'मेदिनी' उसे कहते है जो चरबी (मेद) से उत्पन्न हो। इसका अर्थ यह है कि कभी आर्यों को यह भी विश्वास था कि पृथ्वी चरबी से उत्पन्न हुई है।"[1]

कौए के बहुत-से नामो मे 'एकाक्ष' या 'एकनयन' भी है। इसका आशय यह है—या ये शब्द यह बोल रहे है—कि कभी हमारे पूर्वजो का विश्वास था कि कौए के केवल एक आँख होती है। 'एकाक्ष' और 'एक-नयन' शब्दो का यह बोलना 'बावन तोले पाव रत्ती' ठीक है। उस प्राचीन विश्वास की परम्परा अब भी देहातो मे है[2] और वहाँ अब भी लोग इस विश्वास को सत्य मानते हैं। इसके अतिरिक्त अपना प्रसिद्ध न्याय 'काका-क्षिगोलक न्याय' भी पूर्वजो के इस विश्वास की गवाही देता है। इस प्रकार ये शब्द प्राचीन आर्यों के विश्वास की यह विचित्र कहानी युग-युग तक कहते रहेगे।

'चन्द्रमा' के कुछ पर्यायों को लीजिए। 'मृगांक', 'एणाक' (एण= काला हिरण) तथा 'मृगलाछन' आदि शब्द बतलाते हैं कि आर्य चन्द्रमा के अंक के काले धब्बे को 'हिरण' या 'काला हिरण' मानते थे। 'शशाक', 'शशि' या 'शशलाछन' शब्द बतलाते हैं कि वे उसे खरगोश (शश) भी मानते थे। 'अज' शब्द बतलाता है कि चन्द्रमा को वे लोग न जन्मनेवाला मानते थे। यह शायद बहुत पहले विश्वास था। बाद का चन्द्रमा का एक नाम 'अत्रिजात' या 'अत्रिनेत्रज' मिलता है। इससे यह पता चलता है कि बाद मे आर्यों का यह विश्वास हो गया कि चन्द्रमा अत्रि मुनि की आँख से निकला है। यह नाम हमे उस पौराणिक कथा की याद दिलाता है जिसके अनुसार 'अत्रि' मुनि ने एक बार पुत्र-प्राप्ति के लिए तपस्या की थी, जिसके फलस्वरूप उनकी आँख से उनके पुत्र-रूप 'चन्द्रमा' का जन्म हुआ था।

---

१. एक पौराणिक उपाख्यान के अनुसार पृथ्वी मधु और कैटभ राक्षसो की चरबी से उत्पन्न हुई थी।

२. देहातो में लोग मानते हैं कि कौए के अक्ष-गोलक दो होते है, पर पुतली एक ही रहती है जो बारी-बारी से दोनो मे जाती है।

'चन्द्रमा' के 'सिन्धुज' तथा 'सिन्धुजन्मा' आदि नाम भी मिलते हैं। इन शब्दो के अनुसार आर्य 'चन्द्रमा' को सिन्धु से उत्पन्न मानते थे। स्पष्ट ही यह विश्वास समुद्र-मन्थन नामक पौराणिक आख्यान पर आधारित है। चन्द्रमा का 'समुद्रनवनीत' (नवनीत मथने पर निकलता है) नाम समुद्र-मन्थन को और भी स्पष्ट कर देता है। यो कुछ वैज्ञानिक मानते है कि चन्द्रमा पृथ्वी का ही एक वह अश है, जो उसमे से निकल गया और अब पृथ्वी के चारो ओर घूम रहा है। साथ ही उसके 'पृथ्वी' मे से निकलने से जो गर्त्त बना वही पानी भरने पर समुद्र हो गया। यदि वह तथ्य सचमुच्च वैज्ञानिक है तो 'सिन्धुजन्मा' यह भी बतलाता है कि हमारे पूर्वज प्राचीन आर्य भी इस वैज्ञानिक तथ्य से अवगत थे।

आजकल 'श्मशान' उस स्थान को कहते हैं जहाँ मुरदे जलाये जाते हैं, किन्तु स्वय 'श्मशान' शब्द कुछ और बातें बतलाता है। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति' मे लिखा है कि 'श्मशान' (शेरते यत्र शवा) शब्द का धात्वर्थ हमे बतलाता है कि 'श्मशान' मुरदा गाडने का स्थान था न कि जलाने का। यास्क ने अपने निरुक्त मे भी 'श्मशान' का धात्वर्थ दिया है 'शरीर के लेटने की जगह'। अत 'श्मशान' शब्द यह बतलाता है कि हिन्दू पहले मुरदे जलाते नही थे, अपितु मुसलमानो और ईसाइयो की भाँति गाडते थे। आजकल विद्वान अन्य आधारो पर भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे है कि आर्य पहले मुरदे गाडते थे। मुरदा जलाने की प्रथा उन्होने अनार्यों से बाद मे ग्रहण की।

खाने के तम्बाकू का एक नाम 'सुर्ती' है। 'सुरती' या 'सुर्ती' शब्द पर ध्यान दीजिए। इसका अर्थ है 'सूरत की'। शब्द बतला रहा है कि यह 'सूरत' नगर से आयी। तथ्य यह है कि तम्बाकू का पुर्तगालियो के साथ भारत मे प्रवेश हुआ और उनका प्रधान स्थान 'सूरत' शहर था। इसी कारण 'सूरत' शहर से आनेवाली चीज 'सूरत की' या 'सुर्ती' कहलायी। देखिए, अपने आदि-स्थान के सम्बन्ध में यह शब्द कितने पते की बात बतला रहा है!

मोटे रूप में यहाँ चीनी तीन प्रकार की होती है। कच्ची चीनी को 'शक्कर' कहते है। 'शक्कर' शब्द संस्कृत 'शर्करा' से निकला है, अत.

निश्चय ही चीनी का यह रूप भारतीय है। 'चीनी' उस चीनी को कहते हैं जो सफेद होती है। जैसा कि 'चीनी' शब्द बतला रहा है कि 'चीनी' का यह रूप सर्वप्रथम भारत मे चीन से आया और उन्ही लोगो से सम्भवतः भारतीयो ने इस प्रकार की चीनी बनाना सीखा। चीनी का एक तीसरा नाम 'मोरस' भी कही-कही मिलता है। भोजपुरी मे पहले रवेदार सफेद चीनी को 'मोरस' ही कहते रहे हैं। 'मोरस' शब्द 'मॉरिशस' का बिगडा हुआ रूप है। यहाँ 'मोरस' शब्द स्पष्ट कह रहा है कि इस प्रकार की चीनी भारत मे पहले मॉरिशस से आती थी। कुछ दिन पूर्व के व्यापारिक भूगोल मे भी यही बात मिलती है।

मिठाई बनाने या बेचनेवाले को 'हलवाई' कहते हैं। 'हलवाई' शब्द 'हलवा' से बना है और इस प्रकार 'हलवा' बनानेवाला ही मूलतः 'हलवाई' है। किन्तु हलवाई सभी मिठाइयाँ बनाता है। इसका अर्थ यह है कि मूलतः 'हलवा' सभी प्रकार की मिठाइयों को कहते थे। अरबी, फारसी मे अब भी यह शब्द सभी प्रकार की मिठाइयो के लिए प्रयुक्त होता है। आज हलवा का अर्थ केवल 'हलवा' है, यह बाद का विकास है।

'स्याही' रोशनाई का प्रचलित नाम है। 'स्याह' फारसी शब्द है और इसका अर्थ 'काला' होता है। यहाँ यह शब्द स्पष्टतः बतला रहा है कि आरम्भ मे 'स्याही' केवल काले रग की होती थी। नीली, हरी आदि का विकास बाद मे हुआ।

'श्रुति' वेद का नाम है, पर 'श्रुति' का धात्वर्थ है 'श्रवणेन्द्रियजन्य ज्ञान'। इस प्रकार 'श्रुति' शब्द बतलाता है कि वेद पहले पढे नही अपितु सुने जाते थे। यह कहा भी जाता है कि पहले वेदो की लिखित परम्परा नही थी। गुरु लोगो से सुनकर शिष्य लोग इन्हे याद कर लेते थे और फिर वे लोग अपने शिष्यो को सुनाकर कण्ठाग्र कराते थे। इस प्रकार श्रुति-रूप मे ही वेदों की परम्परा थी।

'कागज' को 'पत्र' (काग़ज-पत्तर) भी कहते है। 'पत्र' का मूल अर्थ 'पत्ता' है, अत स्पष्ट है कि पहले पत्ते पर लिखते थे। कहना न होगा कि आज भी सहस्रों पुराने ग्रन्थ 'तालपत्र' आदि पर लिखे मिलते हैं।

'लोटे' के साथ अपने यहाँ एक बरतन 'गिलास' चलता है। इसका

मूल अग्रेज़ी शब्द 'ग्लास' (शीशा) हैं। इस स्थिति से यह अनुमान लगता है कि यहाँ पहले-पहल शीशे के ही 'गिलासो' का प्रचार हुआ। बाद मे धीरे-धीरे 'धातु', 'प्लास्टिक' आदि के 'गिलास' बनने लगे।

अग्रेज़ी में कलम को 'पेन' (Pen) कहते। 'पेन' शब्द लैटिन शब्द 'पेन्ना' (Penna) से बना है, जिसका अर्थ 'पंख' होता हैं। यह शब्द स्पष्ट कह रहा है कि पहले 'कलम' पंख की बनती थी। यह परम्परा भारत में भी रही हैं। बहुत-सी पुरानी तसवीरों मे पख की कलमें आज भी दिखायी देती हैं।

'दुहिता' का अर्थ पुत्री या लडकी होता हैं, पर इसका धात्वर्थ 'दूध दुहनेवाली' होता है। इसका आशय यह है कि पहले घर मे प्राय. लडकियाँ ही दूध दूहती थी।

'ननद' शब्द संस्कृत शब्द 'ननन्द' से निकला है। 'ननन्द' का अर्थ है 'जो प्रसन्न न हो'। आज भी 'ननद' और 'भावज' मे प्रायः यही व्यवहार रहता है। भावजो के बहुत-कुछ करने पर भी ननदें उनसे प्रसन्न नही रहती। यह शब्द बतला रहा है कि ननद और भावजो का यह व्यवहार या सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है।

अग्रेज़ी का 'पेपर' (Paper) शब्द लेटिन शब्द 'पेपीरस' (Papyras) से निकला है। Papyras एक घास का नाम है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि पहले कागज इसी घास से बनाया जाता था।

मुसलमान लोग अमुसलमान लोगो को 'काफिर' कहते है। इसी कारण उनके शब्दो मे हिन्दू भी 'काफिर' है। इसके साथ ही लोग यह भी समझते हैं कि 'काफिर' शब्द गन्दा है और अमुसलमानों को 'क़ाफिर' नाम देने मे मुसलमानो का कोई बुरा खयाल था। आज मुसलमान लाख कहें कि आपको 'काफिर' कहने में हम लोगो का कोई गन्दा खयाल न था तो हम-आप न मानेंगे, पर जब 'काफिर' शब्द स्वयं बोल रहा है तो मानना ही पडेगा। 'क़ाफ़िर' के लफ्ज़ी माने है 'इन्कार करनेवाला'। इस प्रकार जिन लोगों ने मुसलमान होना अस्वीकार किया वे लोग अरबी मे 'काफिर' कहे गये। ज़ाहिर है कि अमुसलमानो का मुसलमानों द्वारा 'काफिर' कहा जाना इस रूप में ठीक ही है। तत्त्वतः एक 'ईसाई'

के लिए सभी 'अईसाई' काफिर हैं और हिन्दू के लिए सभी अहिन्दू भी।

कुछ थोडे-से शब्दो का बोलना यहाँ हमने सुना। कहना न होगा कि शब्दो का बोलना मनोरजक तो है ही, साथ ही सुननेवालो के लिए बड़ा ज्ञानवर्धक भी है। यदि किसी भाषा के सारे शब्दों को इस दृष्टि से छान डाला जाये तो उसके बोलनेवालो के विषय में बहुत-सी ऐसी महत्त्व-पूर्ण बाते सामने आ सकती हैं जो किसी और प्रकार से स्पष्ट ही नही हो सकती।

५ : : शब्द मनोरंजक होते हैं

आपने देखा होगा, कुछ व्यक्ति बड़े मनोरंजक होते है, ठीक उसी प्रकार कुछ शब्द भी बडे मनोरजक होते हैं। आप उन्हे ज़रा-सा छेडिए, वे आपका मनोरंजन करने लगेंगे—अपनी आन्तरिक बनावट से, अर्थ की विचित्रता से, व्युत्पत्ति से ··।

'बमपुलिस' हिन्दी का एक प्रचलित शब्द है। विशेषत उत्तर भारत के लगभग सभी नगरो मे इसका प्रयोग सर्वसाधारण तथा बडे दोनो ही स्तरो के लोगो द्वारा किया जाता है। 'बमपुलिस' उस पाखाने को कहते हैं, जो म्युनिसिपैलिटी या कारपोरेशन की ओर से बनवाया जाता है और जिसकी सफाई आदि का प्रबन्ध भी उसी की ओर से होता है। यह सार्वजनिक स्थान है और इसका उपयोग सभी कर सकते हैं। इसमें दो शब्द हैं। प्रथम शब्द 'बम' का तो इस प्रसग मे कुछ विशेष अर्थ नही लगता, पर दूसरे शब्द 'पुलिस' का अर्थ सिपाही हो सकता है। लोगों का ऐसा ख्याल है कि इसकी देख-रेख म्युनिसिपैलिटी करती है और यदि कोई इसका दुरुपयोग करे तो पुलिस पकड़ लेती है, अतः इसके साथ का 'पुलिस' शब्द कुछ इसी भावना का द्योतक है। पर इस प्रचलित धारणा को मान लेने पर भी सन्तोषजनक समाधान नही होता। इसकी ठीक व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे एक बडी मनोरंजक और मज़ेदार बात है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी जब भारत मे काम करने लगी तो उसे एक फ़ौज

भी मँगानी पडी। फौज मे प्रधानत इग्लैण्ड के निम्न स्तर के लोग थे। ये सिपाही अपने सामूहिक पाखानो को मज़ाक मे **बम प्लेस** (Bomb place—बम छोडने की जगह या बम की-सी आवाज करने की जगह) कहा करते थे। उस समय यह शब्द निम्न वर्ग के सिपाहियो मे ही प्रचलित था और वह भी केवल मज़ाक का शब्द था। शायद उसी तरह, जैसे कुछ दिन पहले होस्टल के विद्यार्थी पाख़ाने को **बड़ी विलायत** और पेशाबघर को **छोटी विलायत** कहा करते थे। धीरे-धीरे वह मजाक का **बम प्लेस** ही सर्वसाधारण मे प्रचलित हो गया। पहले इसके साथ कुछ विनोदपूर्ण अश्लीलता के भी भाव थे, पर अब व्युत्पत्ति भूल जाने के कारण उसकी कोई गन्ध शेष नही है। हाँ, **बम प्लेस** का **प्लेस** शब्द ध्वन्यात्मक समानता तथा **पुलिस** शब्द के अधिक प्रचलन के कारण **पुलिस** बन गया और इस प्रकार **बम प्लेस** बेचारा **बम पुलिस** हो गया है।

कलदार रुपये को कहते रहे है। 'भज गोविन्द, भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढमते' की नकल पर 'भज कलदार, भज कलदार कलदारं भज मूढमते' भी प्रसिद्ध है। यो इसकी व्युत्पत्ति समझ मे नही आती। बात यह है कि लॉर्ड कार्नवालिस के समय मे जब यहाँ रुपया चला तो लोगो ने सुना कि अग्रेज़ किसी मशीन या कल से रुपया बनाते है। इसी आधार पर लोगो ने रुपये को **कलदार** (कलवाला) कहना शुरू किया। अब यह शब्द अपेक्षाकृत कम प्रयोग मे आता है।

गाज़ीपुर ज़िले मे गगा के दाहिने किनारे पर एक गॉव **रेवतीपुर** है। यह गॉव यदि ससार का सबसे बडा गाँव नही तो कम-से-कम सबसे बडे गाँवो मे से एक तो अवश्य है। यो **रेवतीपुर** शब्द पर ध्यान देने से यही अनुमान लगता है कि जैसे भारत के अनेक ग्राम तथा नगर के नामो मे **पुर** लगा है, इसमे भी है और **रेवती** शायद किसी आदमी का नाम था जिसने इसे बसाया या बलराम की पत्नी **रेवती**, केवल मनु की माता **रेवती** तथा दुर्गा का एक नाम **रेवती** आदि मे किसी **रेवती** का वहाँ से कोई सम्बन्ध है। किन्तु यथार्थत: बात कुछ और ही है। पहले गंगा नदी वही बहती थी। बाद में वहाँ रेत पड गया और धीरे-धीरे गगा की उपजाऊ मिट्टी वहाँ पडने लगी। इस प्रकार वह स्थान

काफी उपजाऊ हो गया। फलतः लोग वहाँ आकर बसने लगे। चूँकि वहाँ **रेत** या **रेती** (बालू) थी, अत वहाँ के बसनेवाले **रेती पर** बसे कहे जाने लगे। इस प्रकार उस स्थान या **गाँव** का नाम ही **रेतीपर** पड गया और बाद मे और **पुर** वाले नामो के साद्दश्य पर बिगड़कर यह रेतीपुर और फिर **रेवतीपुर** हो गया। आज उसे देखकर कोई नही कह सकता कि कभी यह गाँव रेत या बालू से पूर्ण रहा होगा।

प्रयाग से सुलतानपुर की ओर चले तो एक स्टेशन **कूड़े भार** पडता है। कुछ लोग इसे **कूरे भार** भी कहते है। नाम सुनकर उस गाँव पर दया आती है। इससे बुरा और रद्दी नाम ससार मे शायद ही किसी गाँव का हो। **कूड़ा** (कूडा-करकट या रद्दी) तथा **भाड** (वही भाड जिसके विषय मे कहा जाता है—'भाड मे जाओ, मुझसे क्या मतलब') दोनो एक-से-एक बुरे! किन्तु यथार्थता यह है कि इस गाँव का जितना सुन्दर और कलात्मक नाम था उतना शायद ही किसी दूसरे गाँव का हो! न भी हो तो आश्चर्य नही। इसके नाम के विषय मे कहा जाता है कि बहुत दिन पहले कभी अवध के कोई नवाब उसी रास्ते से होकर निकले थे और दो-एक दिन के लिए वहाँ उनका पड़ाव पडा था। नवाब साहब के साथ के किसी शायर ने या खुद नवाब साहब ने उस स्थान से प्रसन्न होकर उसका नाम **कूचे बहार** (बहार की गली) रख दिया। बाद मे वहाँ एक बस्ती बसी जो **कूचे बहार** के नाम से पुकारी जाने लगी। कौन जानता था कि भाषा का ध्वनि-परिवर्तन बेचारे की यह दुर्दशा कर डालेगा!

आज़मगढ जिले मे एक स्थान है **जीयनपुर**। इस नाम को ऊपर से देखने मे लगता है कि यह गाँव किसी **जीयन** नामक व्यक्ति का बसाया हुआ **पुर** लगता है और इस प्रकार इसका इतिहास भी बहुत सुन्दर नही है। आखिर **जीयन** भी कोई नाम है! किन्तु तथ्य यह है कि इसका नाम बडा ही सुन्दर था, और अग्रेज़ो ने इसका सारा सौन्दर्य छीन लिया। इसका मूल पुराना नाम **ज्ञानानन्दपुर** था। अग्रेज़ी मे **ज्ञानानन्दपुर** विशुद्ध रूप मे तो Jnananandpur लिखा जायेगा किन्तु अंग्रेज़ो ने 'मथुरा' को **मुत्रा**, 'लखनऊ' को **लकनाउ** तथा 'बनारस' को **बेना-**

रेस लिखने की भाँति इसे भी Gyananandpur लिखा। नाम बडा था, अत. उच्चारण की असुविधा से बचने के लिए इसे सक्षिप्त करके जी० एन० पुर (G. N. Pur) किया। बाद मे जी० और एन० मिलकर 'जीयन' हो गये और अब यह जीयनपुर है। सरकारी कागजो के अतिरिक्त आस-पास के लोग भी उसे अब इसी नाम से पुकारते है। वहाँ के लोग जो इस बात से अपरिचित है भला क्या जानते है कि उनके स्थान का नाम कभी **ज्ञान** और **आनन्द** से भरा था!

हिन्दी का एक बहुत प्रचलित शब्द **मधुर** है, जिसका अर्थ मीठा होता है। मधुर फल, मधुर बात, मधुर स्मृति, मधुर व्यक्तित्व तथा मधुर वायु आदि इसके अनेक प्रयोग चलते हैं। इन सभी प्रयोगो मे इसका अर्थ अच्छा या मीठा या प्रिय आदि ही होता है। यही **मधुर** शब्द हिन्दी की कुछ बोलियों (अवधी, भोजपुरी आदि) मे **माहुर** हो गया है, जिसका अर्थ **ज़हर** होता है। इतने मधुर तथा प्रिय शब्द का विकसित अर्थ इतना अमधुर तथा अप्रिय कैसे हो गया यह समझ मे नही आता। आश्चर्य इस बात पर भी होता है कि तुलसीदास आदि मे ये दोनों ही शब्द मिलते है

दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिय सजीवन **माहुर** मीचू।

तथा

रघुपति चरन हृदय धरि तात **मधुर** फल खाहु ॥

यहाँ एक अनुमान यह लगता है कि आज के विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि ज़हर अत्यन्त मीठा होता है। शायद इसी सम्बन्ध ने **मधुर** बेचारे को **माहुर** बना दिया है।

अक्षर शब्द लीजिए। यो तो उसका अर्थ **न नष्ट होनेवाला** ब्रह्म तथा आत्मा आदि बहुत-कुछ होता है किन्तु साधारणत: **अक्षर** से हम लोग **हरफ़** या **वर्ण** आदि का अर्थ लेते है। यही **अक्षर** शब्द अपना **न नष्ट होनेवाला** अर्थ लेकर बनता-बिगडता **अक्खड़** बन गया है, जिसका अर्थ कट्टर तथा हठी आदि होता है। कहाँ तो **अक्षर** जैसा अनक्खड शब्द जिसकी सहायता से भला-बुरा जो भी चाहे लिखे और कहाँ वह **अक्खड़** बन गया, जिसके आगे बडो को भी झुकने की नौबत

आ जाय।

संस्कृत का एक शब्द है **क्षीर**, जिसके यो तो कई अर्थ होते है किन्तु प्रमुख अर्थ **दूध** है। **क्षीर** शब्द ही विकसित होकर या विकृत होकर **खीर** हो गया है, जिसमे **क्षीर** के अतिरिक्त चावल, चीनी, केवडा तथा मेवा आदि भी पडता है। चावल की जगह पर मखाना, उडद की दाल, सूजी आदि अनेक अन्य चीजे भी हो सकती है। यह सौभाग्य की ही बात है कि जरा-से ध्वनि-परिवर्तन से **क्षीर** को चीनी तथा मेवा आदि इतनी अच्छी चीजो की प्राप्ति हो गयी। **क्षीर** की विकास-यात्रा यही नही रुकी है। भोजपुरी मे वह **खीर** से भी आगे बढकर **बखीर** हो गया है। यहाँ आश्चर्य और मनोरजक बात है कि **क्षीर** बेचारा 'खीर' बना तो अन्य चीज़ो के साथ उसमे 'क्षीर' (दूध) भी था, पर 'बखीर' मे तो 'क्षीर' (दूध) की एक बूंद भी नही पडती। यह केवल चीनी, पानी और चावल से पकायी जाती है। इसे एक प्रकार का मीठा गीला भात समझिए। बेचारे 'क्षीर' की इस विचित्र गति पर आश्चर्य के साथ दुःख भी होता है कि उसे यहाँ आकर अपना नाम एक ऐसी वस्तु के लिए देना पड़ा जिससे उसका कोई सम्बन्ध नही, जिसमे उसका अस्तित्व लेश-मात्र भी नही।

उर्दू का एक शब्द **बुत** है, जिसका अर्थ मूर्ति होता है। आजकल यह हिन्दी मे भी प्रयुक्त होने लगा है। लोग 'क्या मूर्तिवत् बैठे हो' के स्थान पर 'क्या बुत की तरह बैठे हो' कहना अधिक पसन्द करते है। **धर्मयुग** के १६५१ के **दीपावली**-अक मे 'शब्दो के भीतरी-रहस्य' शीर्षक लेख मे डॉक्टर हेमचन्द्र जोशी ने **बुत** को अरबी का शब्द माना है। पर, जहाँ तक मैं समझता हूँ यह शब्द अरबी का न होकर फारसी का है। फारसी के अधिकारी कोषकार स्टेंगस तथा हिन्दुस्तानी के कोषकार शेक्सपीयर आदि ने भी इसे फारसी ही माना है। बुद्ध-धर्म जब फारस मे पहुँचा और वहाँ बुखारा आदि के बौद्ध विहारो मे बुद्ध की मूर्तियाँ बनी तो चूँकि वे ही पहली मूर्तियाँ थी जो उन अमूर्तिपूजको के सामने आयी थी, अत: वे लोग मूर्ति को ही **बुद्ध** या **बुत**—'बुद्ध' का ही बिगडा रूप—कहने लगे। इस प्रकार मूर्ति के लिए 'बुत' शब्द चल पड़ा। **बुद्ध** बेचारे **बुत** हो गये। फारसी से यह शब्द अरबी मे भी गया।

सस्कृत मे **वाटिका** का अर्थ **बाग** या **बगीचा** होता है। भोज-पुरी तथा अवधी आदि बोलियो मे यह **बारी** हो गया है जिसका अर्थ **बाग** ही है। हिन्दी '**खेती बाडी**' मे भी यही है। बँगला मे यह शब्द **बाड़ि** या **बाड़ी** हो गया है जिसका अर्थ घर होता है। भला देखिए न, कहाॅ तो **बाग** और कहाँ **घर**! असम्भव नही कि प्रारम्भ मे बगीचे मे बने घर को बाडी कहते रहे हो।

उर्दू-हिन्दी का एक शब्द है **जशन**। इसका अर्थ आनन्द, उत्सव या जलसा आदि होता है। मूलतः यह शब्द फारसी का है और वहाँ पुरानी फारसी मे इसका रूप **यश्न** है। भारतीय आर्य और इरानी एक ही परिवार के थे और दोनो ही **यज्ञ** करते थे। यह **यज्ञ** शब्द ही भारतीयो मे तो **यज्ञ** था और ईरानियो मे **यश्न** हो गया। इस प्रकार 'जश्न' (पुरानी फारसी तथा अवेस्ता 'यश्न') और भारतीय 'यज्ञ' शब्द मूलत एक ही है। हाॅ, **यज्ञ** की पवित्रता का 'जश्न' मे नाम भी नही है।

पत्र का वास्तविक अर्थ **पत्ता** है। चूँकि पहले पत्ते पर लिखते थे, अतः धीरे-धीरे 'पत्र' शब्द का प्रयोग उन सभी चीजो के लिए होने लगा जिनपर लिखते है, जैसे छिलका (भोजपत्र) तथा कागज आदि। उन पर चिट्ठी लिखने से चिट्ठी का भी नाम 'पत्र' पड गया। कागज पर छपने से अखबार भी-'पत्र' कहलाने लगे। 'पत्र' शब्द कुछ फैलकर **पत्तर** (सोने का 'पत्तर')हो गया। इतना ही नही 'पत्तर' पतला होता है अतः 'पत्तर' से **पतला** मे बदलकर पतला का अर्थ देने लगा। इस प्रकार एक ही 'पत्र' शब्द 'पत्ता,' **छिलका, कागज** 'चिट्ठी', 'पत्र-पत्रिका', पत्तर, पतला आदि कितने रूप धारण कर चुका है। जब हम कहते हैं कि यह 'पत्तर' 'पतला' है तो क्या हम समझते है कि एक ही शब्द को दो बार कह रहे है।

सस्कृत का **भद्र** शब्द लीजिए। **भद्र** का अर्थ भला होता है। कहते हैं 'ये भद्र पुरुष हैं'। हिन्दी मे 'भद्र' का विकास कई रूपो मे हुआ है। इससे विकसित या निकला हुआ पहला शब्द तो **भला** है, जो ठीक इसी अर्थ मे प्रयुक्त होता है। दूसरा शब्द **भद्दा** है, जिसका अर्थ बुरा

या कुरूप आदि होता है। 'भद्र' से ही निकला तीसरा शब्द 'भोंदू' है, जिसका अर्थ मूर्ख होता है। 'भद्र' से बना एक चौथा शब्द 'भद्रा' भी है। यह तो सस्कृत मे भी प्रयुक्त मिलता है। 'भद्रा' का अर्थ 'बाधा' या 'कुयोग' होता है। ज्योतिष मे यह एक पारिभाषिक शब्द भी है। इस 'भद्रा' से ही 'भदराह' (भोजपुरी) बनता है, जिसका अर्थ 'बुरे शकुन वाला' होता है। सचमुच देखने ही योग्य है भद्र का परिवार!

भोजपुरी तथा अवधी क्षेत्र मे सामान्य भाषा का एक शब्द है 'बुलबुली'। 'बुलबुली' ललाट के पास के बडे-बडे बालो को कहते हैं। देहात मे इसे 'जुल्फी' भी कहते है। 'बुलबुली' शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से बडा ही मनोरजक है। जिन लोगो ने बुलबुल पक्षी को देखा है वे जानते है कि उसके सिर पर आगे की ओर एक उठी हुई चीज होती है। आदमियो की बुलबुली भी उसीसे मिलती-जुलती होती है, अत उसीके आधार पर इसे 'बुलबुली' की सज्ञा दे दी गयी है।

'पगडी' सिर पर बाँधे जानेवाले वस्त्र या साफे को कहते है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से यह शब्द भी बडा मनोरजक है। यो देखने पर यह बडा बेतुका-सा लगता है कि 'पगडी' रहती तो है 'सिर' पर और नाम है 'पैर' (पग) वाला, या जिसे पैर से बाँधते है। बात यह है कि आरम्भ मे 'पगडी' पैर के घुटनो पर बाँधी जाती थीं और वहाँ बाँधने के बाद उसे उठाकर लोग सिर पर रखते थे। देहातो मे कही-कही अब भी यह परम्परा है। पैर पर बाँधने के कारण ही इसे 'पगडी' कहा गया। सकेत्य है कि यह नाम तब का है जब शीनो का प्रचार नही था। शीनो का प्रचार होने पर सीधे सर पर पगडी बाँधी जाने लगी।

'खटराग' का अर्थ है 'झझट'। कहते है—'इतने **खटराग** का काम मुझसे नही होने का'। 'खटराग' शब्द सीधे 'षट्राग' से आया है। पक्के गानो के छ रागो को सीखना कितनी बडी फजीहत है, यह उन्हे सीखने वाले ही जानते है। शायद किसी व्यक्ति ने सीखते-सीखते न आने के कारण परेशान होकर 'खटराग' का झझट के अर्थ मे प्रयोग किया होगा और लोगों ने ठीक देखकर इसे प्रयोग मे लाना शुरू कर दिया होगा। कला और मनोरजन के केन्द्र शब्द 'षट्राग' की यह दुर्दशा ही है

कि उसे 'झझट' का प्राय समानार्थी बनना पडा है।

'मकोय' अपना पुराना और प्रचलित शब्द है, पर इसके स्थान पर आजकल एक शब्द 'रसभरी' चला है। विशेषत शहरो मे तो बहुत-से लोग 'मकोय' को 'रसभरी' ही कहते है। 'रसभरी' के रसयुक्त शरीर की ओर ध्यान देने से ऐसा लगता है कि मकोय के रस से भरी होने के कारण इसे 'रसभरी' की सज्ञा दी गयी है। पर, यथार्थ बात यह नही है। अग्रेज़ी मे मकोय को 'रैस्पबेरी' (Rasp Berry) कहते है। और 'रसभरी' शब्द इस अग्रेजी शब्द 'रैस्पबेरी' का ही बिगडा रूप है। यह ठीक उसी प्रकार हुआ है जैसे 'लायब्रेरी' से मिलते-जुलते नाम 'रायबरेली' से परिचित होने के कारण लोगो ने 'लायब्रेरी' का नाम सुना तो उसे भी 'रायबरेली' कहने लगे। देहातो मे तथा कमपढे और अनपढ लोगों मे पुस्तकालय के लिए 'पुस्तकालय', 'कुतुबखाना' या 'लायब्रेरी' की अपेक्षा 'रायबरेली' शब्द ही अधिक प्रचलित रहा है। शब्दो में इस प्रकार के ध्वनि-परिवर्तनो मे भ्रामक व्युत्पत्ति (Popular Etymology) कार्य करती है। अरबी शब्द 'इन्तिकाल' को भी इसी भ्रामक व्युत्पत्ति के चक्कर मे पडकर सामान्य भाषा मे 'अन्तकाल' मृत्यु बनना पडा है।

'पचानन' शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से कुछ सन्दिग्ध-सा है। 'पचानन' का अर्थ 'सिंह' होता है। पचानन शब्द के अर्थ है 'पॉच मुखवाला'। अब प्रश्न यह उठता है कि 'सिंह' के पॉच मुँह तो होते नही, फिर 'सिंह' का 'पचानन' नाम पडा तो कैसे ? मुझे ऐसा लगता है कि मुँह से 'सिंह' किसी को भी फाड सकता है और प्राय वही काम अपने चारो पंजों से भी कर सकता है। इस प्रकार चार पजे और एक मुँह मिलकर उसके 'पॉच आनन' या 'मुँह' हो गये और वह हो गया 'पंचानन' !

'किकुरी' (भोजपुरी, अवधी क्षेत्र मे विशेष प्रयुक्त) बैठने या सोने के एक विशेष ढग को कहते है। इसमे हाथ-पैर सिकोडकर बैठा या सोया जाता है। जाडे से बचने के लिए गरीब लोग कपडे की कमी में इसी शैली का सहारा लेते है। यह 'किकुरी' या 'केकुरी' शब्द केकड़ा से निकला है। 'केकडा' भी इसी भॉति हाथ-पैर सिकोडकर बैठता है।

अग्रेजी शब्द 'फी' या 'फीस' अब हिन्दी का भी अपना शब्द हो गया

है। मूलत 'फीस' और सस्कृत 'पशु' शब्द एक ही है। पहले क्रय-विक्रय आदि अदला-बदली या 'बार्टर' से होता था। बाद मे पशु ही इसके माध्यम बने। इस प्रकार आज जो काम 'रुपया' करता है तब 'पशुओ' से होता था। इसी परम्परा मे 'पशु' के ही एक रूप 'फी' या 'फीस' का अर्थ पश्चिम मे रुपये से सम्बन्धित हो गया। आज भारत मे 'पशु' पशु-का-पशु ही रह गया और पश्चिम मे वह 'फी' बनकर कहाँ-का-कहाँ पहुँच गया।

'वर्षा' का अर्थ 'बारिश' या 'पानी' होता है तथा 'वर्ष' का अर्थ 'साल' होता है। हमारा ध्यान प्राय· नही जाता कि 'बारिशवाची' और 'साल-वाची' दोनो शब्द 'वर्षा' तथा 'वर्ष' प्राय. एक-जैसे क्यो है। बात यह है कि आरम्भ मे 'महीनो' आदि का निर्माण तो हुआ नही था। अत 'साल' या 'वर्ष' का ज्ञान लोगो को पानी बरसने से होता था। बरसात का मौसम आने पर लोग समझते थे कि पिछली बरसात से एक वर्ष हो गया। इस प्रकार 'वर्षा' पर ही 'वर्ष' का ज्ञान आधारित था, अत 'वर्षा' के आधार पर ही 'साल' का नाम 'वर्ष' पडा। 'वर्ष' की भाँति ही साल के लिए हमारा दूसरा शब्द 'अब्द' है। इसीसे सौ वर्ष को हम 'शताब्दी' कहते है। इस 'अब्द' शब्द का भी सम्बन्ध वर्षा से ही है। इसका मूल अर्थ 'अप्' अर्थात् पानी का 'द' अर्थात् देनेवाला और इस प्रकार 'बादल' है। आर्यों और ईरानियो मे इस प्रकार के कुछ और भी मनो-रजक शब्द मिलते है। 'शरद' अपने यहाँ वर्ष का अर्थ रखता है। 'जीवेम शरद शतम्' (वैदिक) प्रसिद्ध है। कहना न होगा कि 'शरद' ऋतु आने पर भी वर्ष का ज्ञान होने के कारण ही 'शरद' का अर्थ वर्ष हो गया है। इसी प्रकार हेमन्त ऋतु से सम्बन्धित नाम 'हिम' भी वर्ष के अर्थ मे वेदो मे प्रयुक्त हुआ है—'शत हिमा'। इसी आधार पर आचार्य विधुशेखर भट्टाचार्य ने 'द्विवेदी अभिनन्दन-ग्रन्थ' मे प्रकाशित अपने 'सस्कृत का वैज्ञा-निक अनुशीलन' शीर्षक लेख मे यह अनुमान लगाया है कि अपने यहाँ 'ग्रीष्म' का भी कोई पर्याय 'वर्ष' का वाचक अवश्य रहा होगा। वे लिखते हैं, 'यह हो नही सकता कि ग्रीष्म-प्रधान भारत के आर्य अपनी प्रधान ऋतु को ही भूल जायँ।' आगे आपने यह भी बतलाया है कि उन्हे

'अवेस्ता' मे 'हम' शब्द मिला, जो वहाँ ग्रीष्म का पर्याय है। कहना न होगा कि यह 'हम' संस्कृत का 'समा' (अवेस्ता या फारसी का 'ह' सस्कृत मे 'स' रूप मे मिलता है हफ्ता—सप्ताह) है, जिसका अर्थ 'वर्ष' या साल होता है। 'जिजीविषेच्छत समा' (ईषोपनिद् २)।

इस प्रकार हम देखते है कि शब्द और उनका ससार दोनो ही मनोरजन से भरे पडे है।

६ : : शब्द चलते हैं

मनुष्य चलता है तो शब्द भी चलते हैं, किन्तु शब्दो के चलने के दो अर्थ होते है। एक तो चलने का अर्थ है 'प्रचलित होना'। कहा जाता है—अमुक शब्द अब नही चलता। दूसरा अर्थ होता है 'आदमी के चलने' की तरह एक स्थान या देश से दूसरे स्थान पर जाना या यात्रा करना। यहाँ 'शब्द चलते है' का दूसरा अर्थ ही लिया जा रहा है। शब्दों की यात्रा या उनका चलना मनुष्यो के चलने या उनकी यात्रा से भिन्न होता है। मनुष्य यदि एक स्थान से चलकर दूसरे स्थान पर जाता है, तो पहले स्थान पर उसे हम नही देख सकते, किन्तु शब्द एक स्थान से दूसरे, दूसरे से तीसरे और इसी प्रकार और भी कई स्थानो पर जा सकते है, और वे हर स्थान पर देखे जा सकते है। अंग्रेज़ी के बहुत-से शब्द भारत की भाषाओ मे भी प्रचलित है, पर इसका अर्थ यह नही कि यदि वे वहाँ से चलकर आये और यहाँ उपनिवेश बनाकर बस गये तो इंग्लैड से उनका अस्तित्व ही मिट गया। इस दृष्टि से ब्रह्म की बराबरी करते हुए शब्द सर्वव्यापक हो सकते हैं।

कुछ शब्दो की यात्राएँ यहाँ देखी जा सकती है .

अफ़ीम

मूलत यह शब्द यूनानी है जहाँ इसका रूप है 'ओपिअन'। इसका

मूल अर्थ है 'पोस्ते का रस' । अफीम सबसे पहले कदाचित् यूनान में ही बनी । यूनानी भाषा से यह शब्द लैटिन मे पहुँचा और वहाँ इसका रूप हो गया 'ओपिअम' । वहाँ से फ्रासीसी, अग्रेजी, जर्मन आदि सभी यूरोपीय भाषाओ मे यह इसी या कुछ भिन्न रूप मे प्रविष्ट हो गया । यूनान से इसने अरब की यात्रा की और वहाँ यह 'अफयून' बन गया। वहॉ से ईरान होते यह भारत पहुँचा तो भारतीय पण्डितो ने 'अहिफेन' (सर्प का फेन) तथा 'अफेन' रूप मे इसे सस्कृत पोशाक पहना दी । यही शब्द हिन्दी मे 'अफीम,' गुजराती मे 'अफीण', मराठी मे 'अफीम', 'अफीण,' 'अफू' तथा नेपाली मे 'अफिम' आदि रूपो मे मिलता है । चीनी लोग अफीम के बडे शौकीन रहे है, अत यह शब्द भला वहाँ क्यो न पहुँचता ? चीनी मे यह 'अ-फु-युग' रूप मे मिलता है ।

शक्कर

'शक्कर' का आदिस्थान भारत है और इसके लिए अपना पुराना सस्कृत शब्द है 'शर्करा' । प्राकृतो मे आकर 'शर्करा' का 'सक्कर' बना, किन्तु यही 'शर्करा' फारसी मे जाकर 'शकर' तथा अरबी मे 'सुक्कर' बन गया । अरबी से इस शब्द ने पूरे यूरोप की यात्रा की जहॉ विभिन्न भाषाओ मे विभिन्न रूपो मे यह मिलता है । उदाहरणार्थ लैटिन Zuccarum, इटेलियन Zucchero, फ्रासीसी Sucre, Cucre, अग्रेजी Secreen, Sugar, Jaggary, रूसी 'साखर' आदि । इस शब्द ने पूरे भारत की भी यात्रा की है कश्मीरी 'शेकर', गुजराती 'साकर', मराठी 'साखर', 'सिन्धी 'हकुरु' आदि ।

खाँड़

यह भी मूलत भारतीय शब्द है । सस्कृत 'खण्ड' इसका मूल है । इसने भी पूरे भारत की यात्रा की है . पालि 'खण्डो', प्राकृत 'खण्डा', बगला 'खाँड', ओडिया 'खडा', हिन्दी 'खॉड', सिन्धी 'खण्डु', गुजराती-मराठी 'खॉड' आदि । यह शब्द भारत के बाहर भी गया सिंहली 'कड', अरबी-फारसी 'कन्द' (भारतीय मिठाई कलाकन्द मे कन्द यही शब्द है), अग्रेजी

candy आदि।

मुष्क

इस सस्कृत शब्द के कई अर्थ है जिनमे एक है 'कस्तूरी'। इस अर्थ मे इस शब्द ने काफी लम्बी यात्रा की हैं सस्कृत **मुष्क**, फारसी मुश्क, अरबी मुश्क, ग्रीक moschos, लैटिन muscus, फ्रासीसी musc, अग्रेजी musk आदि।

हिन्द

मूलत यह शब्द सस्कृत का सिन्धु है और इसका मूल अर्थ बडी नदी या समुद्र है। सिन्धु नदी बडी थी, अत उसे सिन्ध नाम दिया गया। उसी आधार पर आस-पास का क्षेत्र भी सिन्ध या सिन्धु कहलाया। यह शब्द ईरान पहुँचा तो **स** के **ह** मे परिवर्तन से यह 'हिन्दु' या **हिन्द** हो गया। यह 'हिन्द' धीरे-धीरे पूरे भारत का वाचक हो गया। 'हिन्द' मे फारसी के **ईक** प्रत्यय के लगने से 'हिन्दीक' बना। यही **हिन्दीक** यूनान पहुँचा तो ह ध्वनि के लोप से इन्दिका शब्द बना जिसका अर्थ **हिन्द** या भारत है। यही लैटिन मे इन्दिया तथा आधुनिक यूरोपीय भाषाओ मे इण्डिया और **इन्दिया** आदि रूपो मे मिलता है। चीनी साहित्य मे प्रयुक्त इन्तुको इन्तु तथा **शिन्तु** भी यही है। कहने की आवश्यकता नही कि ईरानी शब्द **हिन्द** और हिन्दु(स्तान) वहाँ से लौटकर फिर भारत मे भी आये और यहाँ के विभिन्न प्रदेशो की भाषाओ मे कई रूपो मे विद्यमान है।

गगा

आज का प्रसिद्ध **गंगा** (गगा नदी का नाम) शब्द हिन्दी मे सस्कृत से आया माना जाता है। पाणिनी के सूत्रो के आधार पर साधकर इसे शुद्ध सस्कृत शब्द कहा भी जा सकता है। पर यथार्थत यह शब्द चीनी-परिवार का है और इसका अर्थ **पानी** है। उधर की यागट्सीक्याग, मीक्याग तथा सीक्यांग आदि नदियो के नामों मे क्याग शब्द यही 'गाग' या 'गगा' है। भारत मे भी यह **गंगा** पहले पानी का ही वाचक था। मराठी मे तो

अब भी **गगा** का अर्थ पानी होता है। यहाँ गगा के अतिरिक्त **राभ गगा पाताल गंगा** आदि नाम भी उस पुरानी बात की पुष्टि करते है। भारत मे प्राचीनतम जाति चीन से होकर ही आयी थी, अत यह शब्द उनके साथ यहाँ चला आया था।

मल

इसी प्रकार का एक दूसरा शब्द '**मल**' है। संस्कृत मे '**मल**' का अर्थ मैल होता है, किन्तु आस्ट्रेलिया की मूल भाषाओ मे इस शब्द का अर्थ **फूल** है। **गगा** की भाँति यह शब्द भी बहुत पहले वहाँ से आनेवाली जातियो के साथ भारत मे आ गया और फूल से सम्बन्धित बहुत-से सस्कृत शब्दो का अश बन गया। उदाहरण के लिए **कमल, चमेली, मौलश्री, कुड्-मल** तथा **परिमल** आदि शब्द देखे जा सकते है।

बुख़ारा

बौद्ध मठो को 'बिहार' कहते है। इन मठो की अधिकता से ही भारत के एक प्रान्त का नाम 'बिहार' है। बौद्ध-धर्म धीरे-धीरे पश्चिमी एशिया मे फैला तो वहाँ भी कुछ स्थानों पर बौद्ध-विहार बने। यात्रा मे घिस-कर यह 'विहार' शब्द वहाँ 'बहार', 'बख़ार', 'बुख़ार' और फिर 'बुख़ारा' बन गया। आज भी वहाँ एक 'बुखारा' नाम का शहर है जहाँ बौद्ध-विहारो के बहुत-से भग्नावशेष हैं। ये भग्नावशेष आज भी कह रहे है कि यह 'बुख़ारा' नाम 'विहार' शब्द का ही विकसित या विकृत रूप है।

खाट

आज का हिन्दी का विद्यार्थी जब अंग्रेजी पढना आरम्भ करता है तो उसे रटाया जाता है सी—ओ—टी 'कॉट' (cot)—कॉट माने 'चारपाई'। उसे शायद नही पता कि उसकी हिन्दी का ही अत्यन्त प्रच-लित शब्द 'खाट' यात्रा करता-करता इंग्लैंड पहुँचा और वहाँ घिस-घिसा कर 'कॉट' बनकर अँग्रेज़ी भाषा मे घर कर गया और इस प्रकार आज वह अपने ही 'खाट' शब्द को कॉट बनाकर रट रहा है। यह कुछ वैसी

ही बात है जैसे कस्तूरी मृग उस कस्तूरी की सुगन्ध के लिए, जो उसकी अपनी है (उसीके शरीर मे है), इधर-उधर दौडता फिरता है।

शब्दो का यह चलना या उनकी यात्रा भाषाओ को बहुत प्रभावित करती है। हिन्दी मे लगभग २५०० अरबी शब्द, लगभग ३५०० फारसी शब्द, लगभग ३००० अंग्रेज़ी शब्द, लगभग १०० पुर्तगाली शब्द, १०० से ऊपर पश्तो शब्द तथा लगभग १२५ तुर्की शब्द इसी प्रकार चलकर आये हैं, जिनका इस समय हिन्दी मे धडल्ले से प्रयोग हो रहा है। इन्होने हिन्दी अभिव्यक्ति को काफी प्रभावित किया है। अंग्रेज़ी तथा जर्मन मे विदेशी शब्दों की सख्या लगभग १५-१५ हज़ार है।

शब्दो की इस प्रकार की यात्राएँ राजनीतिक, व्यापारिक या सास्कृतिक आदान-प्रदान मे होती है, और इस प्रकार ये चलते-फिरते शब्द विश्व को एक सूत्र मे बाँधने की दिशा मे अनादिकाल से प्रयत्नशील है —और शायद सदा रहेगे।

७ : : शब्द मोटे होते हैं

मोटे होने का अर्थ है **फैलना, विस्तार पाना** या **पहले की अपेक्षा अधिक स्थान घेरना**। अर्थ की दृष्टि से शब्दो मे भी कभी-कभी इस प्रकार का विस्तार, फैलाव या मोटापन आ जाता है, जिसे **शब्दों का मोटा होना** कहना अनुचित न होगा। भाषा-विज्ञान की शास्त्रीय भाषा मे शब्दो की इस प्रवृत्ति को **अर्थ-विस्तार** कहते है।

तेल शब्द से हम सभी परिचित है। यदि इस शब्द के शरीर पर ध्यान दे तो यह जानने मे देर नही लगेगी कि इसका सम्बन्ध **तिल** शब्द से है। **तिल** से निकले रस को ही मूलत **तेल** (स० तैल) कहते है। यह **तेल** शब्द धीरे-धीरे मोटा होने लगा और आज इतना मोटा हो गया है कि सरसो, अलसी, दाना, जैतून, मूंगफली, कोइना और बिनौले को कौन कहे मिट्टी के तेल को भी **तेल** कहते है। इतना ही नही, विभिन्न प्रकार के फूलो और वनस्पतियो के **तेल**—जैसे . **चमेली का तेल, अरण्डी का तेल**, धनेस आदि चिडियो का तेल, सॉप-बिच्छू आदि कीडो का **तेल**, सूअर आदि जानवरो का **तेल** और यहाँ तक कि आदमी का **तेल**! यदि आप किसी को धूप मे खूब दौडा दे तो वह अवश्य कहेगा—'आज तो आपने मेरा **तेल** ही निकाल लिया।' कहना न होगा कि एक तिल के रस से फैलकर अनन्त प्रकार के रसो या तेलो को अभिहित करनेवाले इस **तेल** शब्द की मोटाई शब्द-जगत् मे अद्वतीय है। शायद दो-चार-दस भूधराकार शरीर

कुम्भकरण भी इसकी बराबरी न कर सके ।

सब्ज फ़ारसी का एक शब्द है जिसका अर्थ **हरा** होता है । **सरसब्ज बाग** के प्रयोग मे वह अर्थ स्पष्ट है । इस **सब्ज** से ही **सब्जी** शब्द बना है । पहले पालक, बथुवा, चौलाई आदि हरे सागो के लिए **सब्जी** का प्रयोग होता था, जो उचित भी था, किन्तु अब तो **सब्जी** शब्द तरकारी-मात्र का पर्याय हो गया है । 'चौके मे आज क्या **सब्जी** बनी है ?' का अर्थ यह न होकर कि 'चौके मे आज क्या साग बना है ?' यह होता है कि 'चौके मे आज क्या तरकारी बनी है ?' इस प्रकार अब **सब्जी** शब्द मे हरे सागो के अतिरिक्त, पीले रग का काशीफल या कोहडा, अगूरी रग की लौकी घीया या टिण्डे, भूरे रग का आलू, लाल रग का टमाटर और सफ़ेद रग की मूली आदि सभी-कुछ आ गया है । ऐसा लगता है कि इस हरे रग के नाम के भीतर विभिन्न रगो की नुमायश लग गयी है । शायद यह शब्द इतना उदार है कि इसमे अपने-पराये रगो का भेद-भाव भी नही है । इस शब्द का भी मोटापन या फैलाव कम सराहनीय नही ।

अभ्यास शब्द भी मोटे होने का सुन्दर उदाहरण है । मूलत इस शब्द का प्रयोग केवल बाण फेकने के अभ्यास के लिए ही होता था । हलायुध ने अपनी **अभिधान रत्नमाला** मे लिखा है :

बाणमुक्तिर्व्यवच्छेदो दीप्तिर्वेगस्य तीव्रता ।
अभ्यास कथ्यते योग्या श्रमस्थान खलूरिका ।

पर अब तो क्रूर-कोमल, अच्छे-बुरे सभी कार्यो के 'अभ्यास' को **अभ्यास** कहते है । कोई विद्या का अभ्यास करता है तो कोई 'रोमास' का । कोई खेल-कूद का अभ्यास करता है तो कोई योग-साधना का । ब्लेड से पाकेट काटने के अभ्यास की तो कोई बात ही नही, वह तो 'बाण' के अभ्यास के बिल्कुल निकट है ।

निपुण शब्द भी इसी श्रेणी का है । पुण्य-कार्य करनेवाला या पुण्य-कार्य मे दक्ष व्यक्ति पहले **निपुण** कहा जाता था । स्वय **निपुण** शब्द का 'पुण' अश भी इस ओर आशिक सकेत करता है । अब तो आप किसी भी काम मे **निपुण** हो सकते हैं—चोरी, व्यभिचार और असत्य-भाषण से लेकर कविता करने और चित्र बनाने तक मे । 'पुण्य-कार्य' से **निपुण** का

अब कोई सम्बन्ध नही । स्याह को सफ़ेद और सफेद को स्याह सिद्ध करके सरासर झूठ बोलनेवाला पुण्य से कोसो ही नही योजनो दूर वकील भी **निपुण** कहा जाता है ।

गवेषणा शब्द का प्रयोग पहले खोई हुई गायो को खोजने के लिए होता था, पर अब तो आप किसी भी चीज़ की गम्भीर खोज को गवेषणा कह सकते है । आज तो एम० ए० करने के बाद बहुत से लोग किसी विषय को लेकर गवेषणा (Research) करते हैं । यदि अत्यन्त प्राचीन काल का कोई व्यक्ति स्वर्ग या नरक से बुलाया जाय और उसके सामने किसी रिसर्च स्कॉलर के विषय मे कहा जाय कि आपने एक गवेषणात्मक लेख लिखा है तो वह बेचारा समझेगा कि महोदय ने कोई लेख लिखा है जिसमे खोयी हुई गायो के खोजने के तरीको पर प्रकाश डाला गया है । इस तरह **गवेषणा** शब्द भी पहले की अपेक्षा मोटा हो गया है ।

हिन्दी का **कल** शब्द सस्कृत-शब्द **कल्य** के पुत्र का पुत्र अर्थात् पोता है । इस संस्कृत शब्द का अर्थ 'प्रातं.काल' था । 'अमरकोष' मे आता है—

प्रत्यूषोहर्मुखं कल्यमुष प्रत्युष सी (अपि)

बाद मे प्राकृत काल मे **कल्य** का पुत्र **कल्ल** पैदा हुआ, जिसका अर्थ 'आनेवाला कल' हुआ । **कल्ल** का पुत्र हिन्दी का **कल** हुआ तो इसका अर्थ 'आनेवाला' और 'बीता हुआ' दोनो ही कल हैं ।

फारसी शब्द 'सियाह' का अर्थ काला होता है । इसी कारण श्याम-पट्ट (Black board) को 'तख्तसियाह' या 'तख्तास्या' कहते है । इसी 'सियाह' से **स्याही** बना है । पहले केवल काली रोशनाई से लिखा जाता था, अत 'रोशनाई' को **स्याही** कहा जाता था, जो सर्वथा उचित था । किन्तु अब तो लाल, नीली, नीली-काली तथा हरी आदि सभी रग की स्याहियो को **स्याही** कहते है । **सब्ज़ी** की भाँति ही यह शब्द भी मोटा हो गया है और सभी रगो का अपने मे स्वागत कर रहा है ।

सस्कृत का 'परश्वस्' शब्द आनेवाले 'परसो' के लिए प्रयुक्त होता था । उसी से निकला हिन्दी का 'परसो' शब्द 'बीते हुए' और 'आनेवाले' दोनो 'परसो' के लिए प्रयुक्त होता है । हिन्दी की कुछ पहाडी बोलियो मे तो इस शब्द का प्रयोग 'आनेवाले' तथा 'बीते हुए' चौथे,

पाँचवे तथा छठे आदि दिनो के लिए भी होता है। भला देखिए न इस शब्द का विस्तार कितना हो गया। यह कितना मोटा हो गया!

प्रवीण शब्द का मूल अर्थ था **वीणा बजाने मे दक्ष**। **प्रवीण** का **वाणा** अंश भी इस ओर सकेत करता है। पर अब तो **प्रवीण** शब्द किसी भी कार्य मे दक्ष व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हो सकता है, चाहे उसकी सात पुश्तो ने **वीणा** का नाम भी न सुना हो।

ताड़ी आज का एक प्रचलित शब्द है। यो तो उसका प्रयोग मादक होने के कारण वर्जित है, किन्तु इसके ताजे रूप को **नीरा** को निरापद रूप से पिया जा सकता है। जैसा कि शब्द से स्पष्ट है **ताड** का रस ही **ताड़ी** नाम का अधिकारी है, पर अब तो खजूर और नीम के रस को भी ताडी कहने लगे है।

यहाँ तक हम सामान्य शब्दो का मोटा होना या उनका अर्थ-विकास देखते रहे थे। दूसरी श्रेणी के शब्दो मे जानवरो, पक्षियो तथा कीडो के नाम है जो मोटे हो गए है। जब हम कहते है **तुम उल्लू हो** तो यहाँ **उल्लू** का अर्थ **उल्लू पक्षी** न होकर **मूर्ख** है। अत अपने असली स्वरूप के अतिरिक्त मूर्खता का प्रतीक होकर **उल्लू** शब्द के अर्थ का विस्तार हो गया है। इस प्रकार के बहुत से शब्द सभी भाषाओ मे मिलते है। हिन्दी के इस प्रकार विस्तार पाए शब्दो की एक सूची उनके विस्तृत अर्थो के साथ यहाँ देखी जा सकती है।

शब्द	विकसित अर्थ	शब्द	विकसित अर्थ
उल्लू	मूर्ख	गिद्ध	अधिक दूर तक देखनेवाला, गन्दी चीज़े खानेवाला
गीदड़	डरपोक		
भैस	सुस्त, मूर्ख		
कुत्ता	गन्दा, दुबला, जुठा चाटनेवाला	स्यार	चालाक, होशियार
		गाय, गऊ	सीधा
ऊँट	लम्बी गरदनवाला, लम्बा	बन्दर	चचल, नटखट, नकलची
		बैल	मूर्ख
सर्प, काला नाग	ज़हरीला, गम्भीर पर छिपी चोट करनेवाला,	गदहा	मूर्ख
		सूअर	गन्दा, घृणित

शब्द	विकसित अर्थ	शब्द	विकसित अर्थ
	काला	कौवा	काला, चालाक
भालू	बहुत अधिक बालवाला	गिरगिट	अवसरवादी, रंग बदलनेवाला
शेर	वीर, साहसी, हिम्मती	तोता	बेमुरव्वत

कुछ जातियो के नामो का भी इसी प्रकार अर्थ-विकास हुआ है। इसके कुछ उदाहरण देखिए

बनिया	धनलोलुप, मूजी, गन्दा	बाम्हन	डरपोक, पोगा, भिखारी
तेली	गन्दे कपडेवाला	अहीर, जाट	मूर्ख, उजड्ड
राजपुत्र, क्षत्रिय	वीर, रोबवाला	पठान	वीर, रोबवाला
चमार	कजूस, नीच, क्षुद्र	तुर्क	बेधर्म, भक्ष्याभक्ष्य का ध्यान न रखनेवाला
भूमिहार घॉख	जिसका भेद कोई न पा सके, भीतर से धोखा देनेवाला	कोइरी	कमज़ोर, धोखेबाज़
मुसहर	काला		

स्त्री-पुरुषो को भी हमने मोटा कर दिया है :

मर्द	वीर, हिम्मती	औरत	डरपोक, धूर्त, जिसका हाल कोई न जाने, नखरेबाज, कोमल
रण्डी	ऊपरी दिखावेवाली, ऊपर से प्रेम करनेवाली		
बच्चा	कमअक्ल, अपरिपक्व, नादान		

कुछ अन्य वस्तुओ के नामो मे भी अर्थ-विस्तार मिलता है—

पत्थर	कड़ा	तवा	काला
वज्र	कडा	चलनी	जिसमे बहुत छेद हो
पाजामा	मूर्ख	काँटा	दर्द देनेवाला, क्रूर

मूलत· ये एक प्रकार के आलकारिक प्रयोग है, फिर भी इनके मोटे होने मे किसी को सन्देह नही।

उपर्युक्त शब्द जातिवाचक सज्ञाएँ थी। व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ भी

इस मर्ज़ का शिकार मिलती है। 'तुम्हारा गाँव लन्दन नही है' का अर्थ है तुम्हारा गॉव बहुत बडा नगर नही है। 'रावण बनोगे तो शीघ्र ही विनाश होगा' का अर्थ है अत्याचार करोगे तो शीघ्र ही समाप्त हो जाओगे। कुछ व्यक्तियो एव नगरो के नाम यहाँ फैले अर्थ के साथ देखे जा सकते है—

शब्द	विकसित अर्थ	शब्द	विकसित अर्थ
गांधी	सत्यवादी, अहिंसक	हरिश्चन्द्र	सत्यवादी, दृढ
युधिष्ठिर	सत्यवादी	रावण	अत्याचारी
कंस	अत्याचारी	हिटलर	अत्याचारी, तानाशाह
सावित्री	पतिव्रता		
विभीषण	देशद्रोही	जयचन्द	देशद्रोही
वाजिदअलीशाह	विलासी	सिकन्दर	बडा, तेजस्वी
लन्दन	बडा नगर	पेरिस	विलासी नगर
कश्मीर	सुन्दर स्थान	नैपोलियन	वीर, विजेता
कालिदास	शेक्सपियर सफल नाटककार	होमर	सफल कवि
		कामदेव	सुन्दर
महादेव	कामदेव को जीतनेवाला	रति	सुन्दरी

हमने अपने विभिन्न अंगों के नामो के अर्थ भी विस्तृत कर दिये है। जब हम कहते है कि कुरसी के पैर टूट गये है तो इसका अर्थ आदमी या जानवर के पैरो से भिन्न है। इस प्रकार के बहुत से उदाहरण अपनी भाषा मे मिलते है। कुछ प्रमुख यहाँ देखे जा सकते है : नारियल या भुट्टे की **जटा**, पेड या पर्वत की **चोटी**, ईख, आलू या अनन्नास की **आँख**, चने की **नाक**, घडा, सुई, मकान या गाडी का **मुँह**, आरी या मशीन के **दाँत**, कलम की **जीभ**, भग के **ओठ**, घडे या सुराही की **गरदन**, मशीन, गेहूँ या नदी का **पेट**, कागज़, रोटी या मकान की **पीठ**, आँगन या कुएँ का **गर्भ**, कुरसी, प्याला या घडी का **हाथ**, दस्ताने की **उँगली** तथा मेज़, कुरसी या चारपाई का **पैर**, आदि। ऐसे ही पेड़ की **खाल**, पत्ते की **नस**, गाजर की **हड्डी**, फूल का **रज**, तथा तसवीर की **आत्मा** मे **खाल, नस, हड्डी, रज** तथा **आत्मा** के अर्थ मे भी विस्तार हो गया है।

ऊपर के उदाहरणो मे प्रथम सूची जानवरो तथा पशु-पक्षियो आदि की है। इन शब्दो का अर्थ-विस्तार उनके जातीय स्वाभाविक गुण ही है। दूसरी सूची जातियो की है। वहाँ भी अर्थ-विस्तार जातीय स्वाभाविक गुण की ओर ही है। तीसरी सूची मे स्त्री-पुरुष तथा बालक आदि है। यहाँ भी अर्थ-विकास उपर्युक्त दो के ही वर्ग का है। चौथी सूची मे अर्थ-विस्तार रग, रूप तथा स्वभाव की ओर सम्मुख है। पाँचवी सूची मे व्यक्ति, नगरो और देशो के नाम है। यहाँ विकसित अर्थ व्यक्तियो, नगरो तथा देशो के विषय मे प्रसिद्ध गुणावगुणो या बातो की ओर गया है। छठी सूची मे रूप के आधार पर अर्थ-विकास हुआ है। इस सूची का अन्तिम विकास कार्य या समानता पर आधारित है।

यहाँ तक हम सज्ञा-शब्दो के अर्थ-विस्तार पर विचार कर रहे थे। क्रियाओ मे भी विस्तार होता है। आज के बहुत से मुहावरे इसके उदाहरण है। 'यह रुपया **चलता** नही है' वाक्य मे मनुष्य आदि के लिए प्रयुक्त **चलना** शब्द प्रयुक्त किया गया है, किन्तु यहाँ चलने का अर्थ ठीक वही नही है, जो मनुष्य या और जीवो के सन्दर्भ मे होता है। इस प्रकार यहाँ **चलना** शब्द का अर्थ विस्तार पा गया है या अर्थ की दृष्टि से **चलना** शब्द मोटा हो गया है। एक दूसरा उदाहरण **उठना** शब्द का लीजिए। मूलत. **उठना** का अर्थ है 'ऊपर आना'। आज यह शब्द बहुत मोटा हो गया है। कुछ प्रयोग इसके मोटेपन या अर्थ-विस्तार को स्पष्ट कर देंगे।

१. अभी तक सो रहे हो, **उठे** नही ?
२ अब न बैठो, **उठो**। अभी दूर जाना है।
३. देश को **उठाने**वाले तो हमी-तुम है।
४. वह आज ससार से **उठ** गया।
५. बाजार **उठने**वाला है।

हमारी बहुत सी क्रियाओ मे इस प्रकार का विस्तार हुआ है। उदाहरणार्थ बात **रहना**, देश का **सोना**, मुँह **खिलना**, कली का **मुस्कराना**, देह का **टूटना**, दिल **टुकड़े-टुकड़े** होना, बात **कटना**, घर का **रोना**, सस्था **मरना**, दुकान **चलना**, रोब **जमना**, आंख **लगना**, दुकान का **बढ़ना** (बन्द

होना) तथा बच्चा का झुकना (मर जाना) आदि।

इस प्रकार शब्द भी मोटे होते है। किन्तु एक बात है बडी अजीब। बहुत से आदमियो के मोटे हो जाने से राष्ट्र मे सुस्ती आती है, किन्तु बहुत से शब्दो के मोटा होने से भाषा मे चुस्ती आती है।

८ : : शब्द संगति से प्रभावित होते हैं

खरबूज़े को देखकर खरबूजा रग बदलता है। दो-चार वर्ष अंग्रेज़ो के साथ रहने वाले हिन्दी-भाषी भी कभी 'हम टुमको देखना नही मागता' कहने लगते थे। 'तुख्म तासीर सोहबत का असर' तथा 'संसर्गजा दोषगुणा. भवन्ति' भी यही नज़ीर पेश करते है। इसका आशय यह है कि संगति का असर सभी पर पडता है। सुना है कवियो की दुनिया मे फूलो के नीचे रहने वाले मिट्टी के ढेले भी गन्धयुक्त हो जाते है। इस प्रकार जड और चेतन सभी इस नियम के कायल है।

शब्द भी इसके अपवाद नही। वे भी एक-दूसरे से प्रभावित होते है। यो शब्दो की दुनिया मे प्रभावित होना, आदमियो आदि के प्रभावित होने से थोडा भिन्न है। आप अपने मित्र से प्रभावित होगे तो उसके गुणो या दुर्गुणो को अपनायेंगे, किन्तु शब्द जब प्रभावित होते है तो अपना स्वरूप ही बदल देते है। यदि आप किसी से प्रभावित हो और यदि वह व्यक्ति लँगडा हो तो आप भी उसी की तरह लँगडाने लगे तब कही जाकर आप शब्दो की बराबरी कर सकते है ! कुछ उदाहरण लीजिए।

सगुंण

हिन्दी का एक प्रचलित शब्द **निर्गुंण** है। ब्रह्म के विशेषण के रूप मे हम इसका प्रयोग करते है। इसका ही साथी पर इससे भिन्न अर्थ

का एक शब्द **सगुण** है। निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म प्रयोग चलता है। यह **सगुण** शब्द **सगुण** या **सगुन** रूप मे भी मिलता है और निर्गुण शब्द **निर्गुण** और **निरगुण** रूप मे। अशिक्षित जनता मे 'निर्गुन' या 'निरगुन' से प्रभावित होकर 'सगुण' 'सर्गुण' या 'सरगुन' हो गया है। सन्त-कवियो ने भी इस रूप का प्रयोग किया है। कबीर लिखते है—

> **सरगुन** की पूजा करो निर्गुण का धरो ध्यान
> निरगुन **सरगुन** ते परे तहाँ हमारो राम।

कहना न होगा कि यहाँ **निर्गुण** ने **सगुण** को प्रभावित किया है। सगुण ने सम्भवत अपने साथी 'निर्गुण' के सिर पर ताज देखा तो उससे न रहा गया और वह स्वय भी देखा-देखी ताज पहनकर **सर्गुण** बन बैठा।

बाहर

बाहर भी इसी प्रकार सगति से प्रभावित शब्द है। सस्कृत मे शब्द **बाह्य** है। **बाह्य** से हिन्दी मे 'बाह' बन सकता है पर **बाहर** नही बन सकता। भाषा-शास्त्रियो को जब तक सगति से शब्दो के प्रभावित होने का पता न था 'बाहर' की व्युत्पत्ति एक समस्या थी। पर अब यह चीज स्पष्ट है। **बाहर** का ही साथी शब्द है **भीतर**। सस्कृत-शब्द **आभ्यन्तर** से हिन्दी **भीतर** निकला है, और उस साथी शब्द **भीतर** की सगति से प्रभावित होकर **बाह्य** से निकला शब्द **बाह** न होकर **बाहर** हो गया है। यदि यह सगति का प्रभाव न होता तो आज हम 'बाह' शब्द का ही प्रयोग करते!

मुझ

मुझ शब्द भी इसका एक सुन्दर उदाहरण है। सस्कृत मे शब्द **मह्यम्** है। यदि यह शब्द **मुह्यम्** होता तो **मुझ** सम्भव था। 'मह्यम्' से निसृत शब्द को तो **मझ** होना चाहिए। पर यहाँ भी 'बाहर' वाली बात है। **मुझ** का साथी शब्द **तुझ** है। सस्कृत शब्द **तुभ्यम्** से **तुझ** निकला है और उससे प्रभावित होकर **मह्यम्** से निकला शब्द **मझ** भी **मुझ** हो गया है। लगता है कि 'तुझ' के पैर मे जूता था, अत 'मझ' से रहा न गया,

और वह भी जूता पहनकर 'मझ' से 'मुझ' हो गया ।

कुड (could)

कुड एक अग्रेजी शब्द है। यह **कैन** (Can) का रूप है। प्रश्न यह उठता है कि इसमे बीच मे 'एल्' (L) कहाँ से आ गया। कैन मे तो 'एल्' (L) है नही। बात यह है कि **वुड** (would) और **शुड** (should) शब्द 'कुड' के साथी है। ये शब्द क्रमश. विल (will) तथा शैल (shall) से बने है और 'विल' तथा 'शैल' मे 'एल्' है, अत **वुड** और **शुड** मे भी 'एल्' आ गया है और इन **वुड शुड** के प्रभाव से **कुड** बेचारा भी एल्-युक्त हो गया है। बेचारे को सगति के कारण यह व्यर्थ का बोझा ढोना पडा है।

सैंतीस तथा सैंतालीस

सैंतीस शब्द **सप्तत्रिशत्** तथा **सैंतालीस सप्तचत्वारिंशत्** से निकले है। 'सप्त' से विकास 'सैं' होना चाहिए अत इन्हे 'सैतीस' तथा सैतालीस होना चाहिए किन्तु ये 'सैंतीस' एव 'सैंतालीस' है। प्रश्न उठता है कि यह अनुनासिक कहाँ से आ गया। इस शका के समाधान के लिए हमे दोनो के साथी शब्द **पैंतीस** तथा **पैंतालीस** को देखना पडेगा। इन दोनो शब्दो मे **पैं** 'पच' से आया है जिसमे अनुनासिक ध्वनि है, अत इनके पैं मे बिन्दु होना ही चाहिए, और इन दोनो साथियो के बिन्दुओ (अनुस्वारो) से प्रभावित होकर ही **सैंतीस** और **सैंतालीस** भी अनुनासिक युक्त हो गये है।

मनोकामना

शुद्ध शब्द 'मनस्कामना' है किन्तु आजकल सर्वत्र 'मनोकामना' शब्द प्रयुक्त होता है। तथ्य यह है कि सस्कृत मे **मनोगति मनोयोग मनोरंजन** तथा **मनोविकार** आदि शब्द है और उन्ही की सगति मे पडकर प्रभावित होकर बेचारा **मनस्कामना मनोकामना** हो गया है यद्यपि व्याकरणिक दृष्टि से यह अशुद्ध है।

दायाँ

दायाँ शब्द संस्कृत शब्द **दक्षिण** से विकसित हुआ है। **दक्षिण** से स्वाभाविक विकास 'दखिन', 'दाहिन', 'दहिन', 'दहिना', या 'दाहिना' हो सकता है। इनमे 'दाहिन', 'दहिन', 'दहिना' तथा 'दाहिना' शब्द तो मिलते भी है। किन्तु **दक्षिण** का विकास **दायाँ** नही हो सकता। इस विकास का रहस्य यह है कि सस्कृत शब्द **बाम** का विकसित रूप **बायाँ** है और इसकी संगति के प्रभाव से 'दक्षिण' का विकसित रूप 'दाहिना' के साथ-साथ 'दायाँ भी हो गया है।

सुक्ख

सुक्ख शब्द शुद्ध नही है तथा साहित्य मे आजकल प्रयुक्त नही होता, किन्तु ग्रामीण बोलियो मे बोला जाता है। कबीर का एक दोहा है—

जे जन भीजे रामरस बिकसित कबहुँ न रुक्ख।
अनुभव भाव न दरसै ते नर **सुक्ख** न दुक्ख।

इस शब्द के बनने का कारण यह है कि 'दु ख' शब्द विसर्ग के कारण 'दुक्ख' हो गया है और उसका साथी होने के कारण से 'सुख' शब्द भी उसी से प्रभावित होकर 'सुक्ख' हो गया।

यहाँ तक हम लोग उदाहरणो पर विस्तार से विचार करते रहे। अब सक्षेप मे कुछ और उदाहरण देखे जा सकते है।

सस्कृत मे भी शब्दो का सगति से प्रभावित होना पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। **वृहस्पति** मे वृह षष्ठी का रूप है अत· वृहस्पति नियमतः ठीक है। इसी के प्रभाव से **वनस्पति** बना है, यद्यपि नियमतः इसमे 'स्' नही होना चाहिए और शब्द होना चाहिए था 'वनपति'। **पति** शब्द का पंचमी का रूप नियमत **पते** होना चाहिए जैसा कि कुछ स्थानो पर मिलता भी है, किन्तु इसका प्रचलित रूप **पत्युः** है। यहाँ यह शब्द **स्वसृ, मातृ** तथा **पितृ** आदि अन्य निकट सम्बधियो के लिए प्रयुक्त शब्दो से प्रभावित है। इनका भी पचमी का रूप क्रम से **स्वसुः मातुः** तथा **पितु** होता है। सस्कृत मे **ग्यारह** के लिए मूलत. **एकदश** शब्द है जो **द्वादश** से प्रभावित होकर

एकादश हो गया है। पहले सस्कृत मे केवल युग्म शब्दो के लिए **द्विवचन** का प्रयोग चलता था। **पादौ, कर्णौ** तथा **पितरौ** आदि। बाद में इन शब्दों के प्रभाव से विलोम युग्म के लिए भी होने लगा। **लाभालाभौ, जयाजयौ**। कुछ दिन बाद यह प्रभाव और भी बढा और द्वन्द्व समास वाले शब्दो मे भी यह होने लगा, **सिंह-श्रृगालौ** तथा **रामलक्ष्मणौ** आदि। सस्कृत **कियत्** शब्द से प्राकृत मे **कित्तिय** बना। **एतावत्** से **एत्तिय** होता पर **कित्तिय** के सग के प्रभाव से यह **इत्तिय** हो गया। साथ ही इन दोनो के प्रभाव से एक तीसरा शब्द **जित्तिय,** भी बना। ये ही तीनो हिन्दी मे **कित्ता, इत्ता-जित्ता** या **कितना, इतना, जितना** है। यहाँ भी इनका आपस मे प्रभाव-साम्य स्पष्ट है। **कर्मन् चर्मन** आदि अन् अन्त वाले शब्दो का प्रथमा तथा द्वितीया बहुवचन मे **कर्माणि** तथा **चर्माणि** बनता है, पर इनके ही प्रभाव से 'फल' (जिसके अन्त मे 'अन्' नही है) का भी **फलानि** बन जाता है। इस प्रकार के और भी बहुत से रूप सस्कृत मे भरे पडे हैं जो दूसरे शब्दों के रूपो से प्रभावित है।

इस प्रकार शब्द भी सगति से प्रभावित होते है। हॉ, एक बात अवश्य है, मनुष्य पर मनुष्य की सगति का प्रभाव लाभकर कम ही होता है, प्राय हानिकर ही होता है, क्योकि बुरे के सग मे अच्छे भी प्राय बुरे बन जाते है, किन्तु अच्छे के सग मे बुरे शायद ही कभी अच्छे बनते है। इसके विपरीत शब्दो पर प्रभाव का परिणाम हमेशा अच्छा ही होता है, क्योकि इससे भाषा मे किसी-न-किसी रूप मे नियमितता और समानता आती है, जिससे भाषा का सरलीकरण होता है।

९ : : शब्द उन्नति करते हैं

शब्दो के उन्नति करने का अर्थ है उनके अर्थ का अवनतावस्था से उन्नतावस्था की ओर आना। एक उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायेगी। आज का **अछूत** शब्द १९२० के पहले के **अछूत** शब्द के साथ नही रखा जा सकता। महात्मा गाधी ने अपने वरदहस्त से अछूतो का स्पर्श करके तथा उन्हे हरिजन कहकर इस शब्द को काफी ऊँचा उठा दिया है। यदि १९२० के पूर्व के **अछूत** शब्द के साथ गंदा, नीच तथा विद्या एव ज्ञान का अनधिकारी आदि घृणात्मक भावनाएँ लगी थी तो आज के **अछूत** शब्द के साथ युग-युग का कुचला, समाज का सच्चा सेवक आदि करुणा एव श्रद्धा की भावनाएँ सम्बद्ध है। इस प्रकार इस शब्द ने पर्याप्त उन्नति कर ली है। भारत के स्वतत्रता-आन्दोलन की पवित्र आग मे जलकर **जेल, कारा, बन्दी** तथा **क़ैदी** आदि शब्द भी उन्ननि कर गये। कम-से-कम १९२० से १९५५ तक प्राय यही स्थिति रही है।

शब्दो का इस प्रकार का उत्थान सामाजिक, ऐतिहासिक तथा राजनीतिक आदि कई प्रकार के कारणो से होता है। कभी-कभी ये कारण मिश्रित रूप मे भी कार्य करते है। किन्तु, इस विषय मे अभी तक इतना कार्य नही हुआ है कि प्रत्येक शब्द के उत्थान के साथ उसके कारण को भी स्पष्ट किया जा सके।

यहाँ शब्दो के उत्थान के कुछ मनोरजक उदाहरण लिये जा रहे है।

आज का एक प्रचलित शब्द 'साहस' है। इसका प्राचीन अर्थ बुरा कार्य होता था। स्मृतियो मे साहस पॉच प्रकार के कहे गये है .

मनुष्यमारणं स्तेय परदाराभिमर्षणम्,
पारुष्यमनृतं चैव साहस पचधास्मृतम्।

इस प्रकार **साहस** मे मनुष्य-हत्या, चोरी, पर-स्त्री-सम्भोग, परुषता तथा झूठ ये पॉच दुष्कार्य आते है। इस दृष्टि से किसी को 'साहसी' कहना साक्षात् गाली है। किन्तु, आज **साहस** का अर्थ 'हिम्मत' हो गया है और कोई भी व्यक्ति अपने लिए किसी के द्वारा 'साहसी' शब्द-प्रयोग सुनकर गर्व से छाती फुला सकता है। साहस की यह उन्नति सचमुच बडी आश्चर्यजनक है।

इसी प्रकार का एक शब्द **गोसाइँ** या **गोसैयाँ** है। इसका मूल सस्कृत शब्द **गोस्वामी** है, जिसका अर्थ 'गायो का स्वामी' होता था। हलायुध ने लिखा है ·

व्रज. स्याद्गोकुल गोष्ठ गोवृन्दं गोधनं धनम्,
गोमान् गोमी च गोस्वामी गोविंदोऽधिकृतो गवाम्।

आज **गोस्वामी** के तीन अर्थ है। एक अर्थ तो एक जाति-विशेष का है। दूसरा * अर्थ 'पूज्य' या 'सन्त' है, जैसे **गोस्वामी** तुलसीदास। तीसरा अर्थ 'ईश्वर' है। इस अर्थ मे **गोसाइँ** या उसका रूप **गोसैयाँ** दोनो ही प्रयुक्त होते हैं। भोजपुर प्रदेश मे लोग शपथ लेते है 'गऊ गोसैयाँ।' अर्थात् 'गाय और भगवान की कसम'। तुलसी ने भी लिखा है

देव पितर सब तुम्हहिं गोसाइँ।

गोस्वामी शब्द 'गौवो के स्वामी' से 'ईश्वर' का पर्याय हो गया। इस उत्थान मे धार्मिक, सामाजिक या राजनीतिक कारणो ने कार्य नही किया है। **गोस्वामी** का एक अर्थ 'इन्द्रियो का स्वामी' भी होता है। सम्भवत इसी भावना ने इस शब्द को इतना अधिक ऊँचा उठाया है। शब्द-संसार मे उन्नति की यह पराकाष्ठा है, ग्वाला से भगवान !

आज का **मुग्ध** शब्द भी इसी प्रकार का है। इसका पुराना अर्थ 'मूढ' या 'मूर्ख' होता था। 'भामिनीविलास' में कहा गया है

शशाक केन मुग्धेन सुधाशुरिति भाषितः।

किन्तु अब तो इसमे मूर्खता की तनिक भी गन्ध नही है। आप भगवान् के रूप पर भी मुग्ध हो सकते है और किसी नायिका के सौन्दर्य पर भी। परवर्ती सस्कृत-साहित्य मे भी इसके आकर्षक, भोला-भाला तथा सुन्दर आदि अर्थो मे प्रयोग मिलते है। जयदेव ने 'गीत-गोविन्द' मे लिखा है .

हरिरिह मुग्ध वधूनिकरे विलासिनि विलसति केलिपरे।

एक दूसरा शब्द **कपड़ा** लीजिए। सस्कृत मे यह शब्द **कर्पट** था और इसका अर्थ 'फटा-पुराना कपडा' होता था। अमरकोषकार ने कहा है :

पटच्चर जीर्णवस्त्रं समौ नक्तक कर्पटौ।

पालि मे भी यह **कप्पट** होकर इसी अर्थ मे प्रयुक्त होता था। किन्तु, अब इससे उद्‌भूत **कपड़ा** शब्द नये-से-नये और सुन्दर-से-सुन्दर वस्त्र के लिए भी प्रयुक्त होता है। या यो कहिए कि अर्थ की दृष्टि से यह शब्द बूढे से जवान हो गया है।

दर्शन का प्राचीन अर्थ 'देखना' है। उसमे अच्छे या बुरे के देखने का कोई विशिष्ट भाव नही। पर अब या तो देवी-देवताओ के **दर्शन** होते है या नेता-महात्मा आदि असाधारण व्यक्तिवो के। इसी प्रकार **पधारना** शब्द 'पग धारने' से बना है। किसी के भी आने को **पधारना** कह सकते है। पर, अब यह शब्द उन्नत हो गया है और केवल आदरणीय व्यक्ति के आने को ही **पधारना** कहते है। यदि हम-आप कहे कि मै कल पधारूँगा तो लोग हँस देगे।

अग्रेजी मे एक प्रसिद्ध शब्द क्वीन (Queen) है। इसका पुराना या मूल अर्थ 'स्त्री' था पर अब तो यह 'रानी' के पद पर आकर बहुत उन्नति कर गया है।

राम शब्द ने भी पर्याप्त उन्नति की है। वैदिक साहित्य से लेकर 'वाल्मीकि रामायण' तक राम अधिक-से-अधिक महापुरुष थे। उनमें अलौकिकता की कोई बात न थी। पर अब तो यह शब्द साक्षात् भगवान् हो गया है। इस नाम की उद्धरणी करके कोई भी स्वर्ग जा सकता है। **राम** को उठानेवालो मे कबीर और तुलसी का विशेष हाथ रहा है। कृष्ण मे भी इसी प्रकार विकास हुआ है, और अब वे भी ब्रह्म के समकक्ष आसीन हैं।

किसी विशेष व्यक्ति, वस्तु या नाम आदि के प्रति इस प्रकार की धार्मिक भावनाओ के केन्द्रीभूत होने के कारण बहुत से शब्दो की अवस्था पहले की अपेक्षा समुन्नत हो गई है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि अनेक देवी-देवता इसी श्रेणी के है। **मूर्ति** शब्द भी बहुत उठ आया था, यो अब बुद्धिवादिता तथा नास्तिकता के कारण इसके नीचे आने के आसार दिखायी दे रहे है। **पीपल** या **तुलसी** पेड भी पूजा के अधिकारी होने से ऊपर उठ आये है। **प्रयाग, मथुरा, बनारस** आदि बहुत से तीर्थों के नामो मे भी इस प्रकार का उत्थान हुआ है। **गंगा और जमुना** तो 'गगा जी' और 'जमुना जी' हो चुकी है। 'जल' शब्द मूलत. 'पानी' के ही स्तर का था पर अब इसका प्रयोग प्राय तीर्थों से लाये गये जल, गगाजल, या पूजा के काम के जल के लिए होता है। यदि किसी को पानी पीना है तो वह कहेगा, पानी लाओ—यो जल लाओ भी लोग कहते है पर बहुत कम—पर यदि किसी को पूजा के लिए पानी मँगाना है तो 'पानी' न कहकर 'जल' शब्द का ही प्रयोग करेगा। इस प्रकार 'जल' के साथ एक पवित्रता की भावना लग जाने से यह शब्द उन्नत हो गया है। **भोग** का मूल अर्थ है 'खाना' या 'उपभोग करना'। किन्तु अब देवता या देवी के भोग लगाये जाने वाले भोजन को **भोग** कहते है। अब 'कर्म-भोग' आदि कुछ प्रयोगों को छोडकर **भोग** शब्द देवी-देवताओ के **भोग** के पवित्र अर्थ मे ही प्रयुक्त होता है। **गायत्री** एक वैदिक छन्द का नाम था। इसी छन्द मे लिखित एक मन्त्र की प्रतिष्ठा होने से अब लोग छन्द-रूप मे भूलकर उस मन्त्र को ही गायत्री मानने लगे है, अत इसकी प्रतिष्ठा बढ गयी है।

तीर्थ का मूल अर्थ है तीर पर बसा स्थान। पर अब इसका अर्थ पवित्र स्थान हो गया है। इस शब्द ने भी काफी उन्नति कर ली है।

मुनि शब्द का सम्बन्ध 'मौन' शब्द से है। आरम्भ मे 'मौन' रहने वाले को **मुनि** कहते थे, पर मौन प्राय. 'तपस्वी' आदि ही रहते थे अत धीरे-धीरे यह शब्द 'तपस्वी' या 'ऋषियो' के लिए प्रयुक्त होने लगा। अब तो मुनि शब्द साक्षात् 'ऋषि' या 'तपस्वी' हो गया है। रामचरित-मानस मे भी आया है—

निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना। सुता बोलि मेली मुनि चरना॥

सत् शब्द का मूल पुराना अर्थ था 'जो हो' या 'विद्यमान'। किन्तु बाद मे इसका अर्थ 'अच्छा' हो गया। सत्पुरुष (सत्+पुरुष), सज्जन (सत्+जन), सदाचार (सत्+आचार) मे यही अर्थ है।

इस प्रकार शब्द भी उन्नति करते है।

१० : : शब्द अवनति करते हैं

कहते है 'जिसकी उन्नति होती है वह अवनति भी करता है।' शब्दो के विषय मे यह तो सत्य नही है कि जो शब्द विशेष उन्नति करता है वही गिरता या अवनति भी करता है, किन्तु हाँ, यह सत्य है कि यदि कुछ शब्द अपने जीवन मे उन्नति करते हैं जैसा कि पीछे हम देख चुके है, तो कुछ शब्द अवनति भी करते है जैसा कि यहाँ हम देखेगे।

अरबी का एक शब्द **गुलाम** है। यह हिन्दी मे भी प्रचलित है। अभी कल तक हमारा देश गुलाम रहा है। अरबी मे इसका अर्थ मूलत 'बच्चा' होता था। विकसित होकर बाद मे यह शब्द बच्चे से लेकर २५ वर्ष के जवान तक के लिए प्रयुक्त होने लगा और आगे चलकर इसका अर्थ अधेड हो गया। फिर किन्ही परिस्थितियो मे पडकर यह नौकर का पर्याय हो गया और आज तो बेचारा नौकर से भी गया-गुज़रा हो गया है। नौकर तो प्रतिमास वेतन पाता है और जब चाहे नौकरी छोड सकता है, पर **गुलाम** का तो अपने शरीर और जीवन पर भी कोई अधिकार नही रहता। मालिक ही उसका सब-कुछ या ईश्वर है। यहाँ हम स्पष्ट देखते है कि **गुलाम** शब्द की बहुत अवनति हो गयी है। मध्य-युग के आरम्भ मे इस शब्द का भाग्य अवश्य पलटा था, जब यह दिल्ली के तख्त पर आसीन हुआ था, पर फिर गुलाम-वश के पतन के बाद अपने पुराने पतित स्थान पर आ गया। कौन जाने अभी इसे किस रसा-

तल मे गिरना है ?

दूसरा उदाहरण सस्कृत शब्द **असुर** का लिया जा सकता है। धातुत इसका सम्बन्ध 'अस्' धातु से है जिसका अर्थ 'चमकना' होता है। इसी आधार पर **असुर** का प्राचीनतम अर्थ 'सूर्य' था। आप्टे ने अपने संस्कृत कोष मे और अर्थो के साथ इसे भी दिया है। आगे चलकर 'असुर' शब्द देववाची हुआ और देवताओ के लिए प्रयुक्त होने लगा। ऋग्वेद मे आता है—

स्वस्ति पूषा असुरो दधातु न.।

किन्तु आज यह शब्द राक्षसवाची है तथा इसमे से 'अ' अलग करके 'सुर' को देवतावाची माना गया है। 'असुर' शब्द के इस पतन का अनुमानित कारण यह है कि जिस प्रकार 'असुर' हमारे यहाँ देववाची था उसी प्रकार परिवर्तित रूप या ध्वन्यन्तर से यही शब्द 'अहुर' (अहुर मज्दा) के रूप मे पारसियो के यहाँ देव या ईश्वरवाची था। जब आर्यों और पारसियो मे विरोध हुआ तो उनके देववाची शब्द **असुर** (अहुर) को हमने अपने यहाँ पदच्युत करके राक्षसवाची करार दिया तथा 'अ' हटाकर सुर को देववाची बनाया। पर साथ ही पारसी भी कब चूकने वाले थे! उन्होने हमारे शब्द 'देव' को अपने यहाँ असुरवाची बना लिया। उर्दू-हिन्दी मे 'देव-दानव' मे 'देव' का बुरा अर्थ वही से सम्बद्ध है। ख़ैर यह तो इन लोगो का आपसी वैर था और बुरा हुआ बेचारे शब्दो का। सस्कृत मे **असुर** शब्द अवनति को प्राप्त हुआ और पुरानी फारसी मे **देव**।

वेद-वाक्य 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू' मे **कवि** का अर्थ मेधावी है। बाद मे सस्कृत-साहित्य मे इसका अर्थ 'कविता करनेवाला' है। ये दोनो ही अर्थ पर्याप्त सम्मान्य है। सस्कृत के बाद भी पालि, प्राकृत, अपभ्रंश तथा पुरानी हिन्दी मे इसकी प्रतिष्ठा अक्षुण्ण है। कवियो का कितना सम्मान होता था कहने की आवश्यकता नही। अभी कुछ ही सदी पूर्व भूषण की पालकी मे महाराज छत्रसाल ने कन्धा लगाया था। पर छायावादी युग के आते ही **कवि** शब्द का इतना पतन होना शुरू हुआ कि आज तो उसे एक साहित्यिक गाली कहे तो अत्युक्ति न होगी। जहाँ पहले

कवि शब्द के साथ श्रद्धा, सम्मान, पाण्डित्य एव असाधारणत्व की भावना थी अब इसका अर्थ भावुक, ससार मे रहने के अयोग्य, कुछ मूर्खता लिये महत्त्वाकाक्षी, दिवास्वप्न की प्रतिमूर्ति तथा अव्यावहारिक आदि है। कहाँ तो राजा लोग कवियो की पालकी उठाने मे अपना गौरव समझते थे और आज कहाँ वही कवि बरसाती मेढको की भाँति दर-दर की खाक छान रहे हैं। **कवि** शब्द के इस अप्रत्याशित पतन के कारण जानने के लिए बहुत दूर जाने की आवश्यकता नही। कवियो का आधिक्य तथा उनमे गम्भीरता का अभाव एव कल्पना का असन्तुलित आधिक्य आदि पर ही उनकी इस अवनति का उत्तरदायित्व है।

मूर्ख, जाहिल या उजड्ड अर्थ मे प्रयुक्त शब्द **उजबक** लीजिए। मूलत. यह तुर्की भाषा का शब्द है। तुर्की भाषा मे **उजबक** एक तातारी या तूरानी कबीले को कहते है। सोवियत संघ का उजबेकिस्तान (जिसकी राजधानी ताशकन्द है) इसी कबीले का प्रदेश है। बाबर भी इस कबीले से सम्बद्ध था, वह अपने साथ इस कबीले के बहुत-से लोगो को लाया था। आरम्भ मे यहाँ भी इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ मे हुआ। नूरुल-हसन नय्यर के 'नूरुल लुगात' मे एक शेर उद्धृत है, जिसमे इस शब्द का यही अर्थ है। शेर यो है—

ढीठ व नेज कि आलम मे नही जिसकी पनाह,
चश्म व तुर्क की हो कौम जिन्हूँ की **उजबक**।

भारत मे आने के बाद कुछ दिन तक तो यह शब्द अपने मूल अर्थ मे प्रयुक्त होता रहा जैसा कि ऊपर के शेर से स्पष्ट है, किन्तु बाद मे इसका पतन आरम्भ हो गया। प्रश्न यह उठता है कि मुगल ख़ानदान के आदि पैतृक नाम या जात से सम्बद्ध नाम की यह दुर्दशा (मूर्ख का पर्याय होने की दुर्दशा) उनके सामने ही क्यो हुई ! इसका एकमात्र उत्तर यह है कि विज्ञान के नियम ससार मे बड़े-छोटे आला-अदने किसी की भी अवहेलना करके घटित हो सकते हैं। मुगल जब भारत मे आये तो स्पष्टत सभ्यता तथा सस्कृति मे भारतीयो की तुलना मे पीछे थे। वे स्वभाव से उजड्ड और क्रूर थे ही, अत. **उजबक** शब्द भारत में आने के बाद ही भारतीय जनता मे क्रूरता, उजड्डता तथा शायद मूर्खता आदि के प्रतीक के रूप मे प्रच-

लित हुआ। कुछ दिन बाद मुगल खानदान से **उजबक** शब्द के सम्बन्ध को लोग जब भूल गये तो जनता मे प्रचलित भावना स्वभावत बलवती हुई और उस भावना के साथ उजड्ड तथा मूर्ख आदि अर्थ मे यह शब्द चालू हो गया। इस प्रकार इस शब्द का पतन आगन्तुक उजबको के प्रति भारतीयो के कुछ गिरे दृष्टिकोण के कारण हुआ। फारसी मे ठीक यही दशा **हिन्दू** शब्द की हुई है। इसका भी कारण था वहाँ के लोगो का हिन्दुओ के प्रति घृणापूर्ण दृष्टिकोण। फारसी कोषो मे **हिन्दू** शब्द का अर्थ हिन्दुस्तानी के अतिरिक्त काला नौकर, गुलाम, लुटेरा तथा अपवित्र आदि मिलता है।

उढ़री अवधी तथा भोजपुरी का प्रचलित शब्द है, जिसका अर्थ 'भगायी हुई स्त्री' होता है। इस रूप मे यह एक गाली भी है, जिसका प्रयोग निम्न वर्ग की स्त्रियाँ करती हैं। मूलत यह शब्द सस्कृत शब्द **ऊढा** से सम्बद्ध है। 'ऊढि' का अर्थ विवाह, 'ऊढ' का विवाहित पुरुष तथा **ऊढा** का विवाहिता स्त्री होता है। 'विवाहिता स्त्री' से इसका अर्थ 'भगायी हुई स्त्री' हो गया और यह स्पष्टत इस शब्द की अवनति है। इस अवनति का कारण शब्द के धातु 'वह्' (ले जाना) मे ही छिपा है। मध्ययुग मे जब नायिका-भेदो मे नये-नये अनुसन्धान होने लगे तो परकीया नायिकाओ के एक भेद को **ऊढ़ा** नाम दिया गया। रीतिशास्त्र मे **ऊढ़ा** उस नायिका को कहा गया है जो विवाहिता हो पर अपने पति की उपेक्षा करके दूसरे से स्नेह करे। बाद मे इसी दिशा मे और विकास या ह्रास हुआ और इसकी धातु 'वह्' (ले जाना या उठा ले जाना) की सार्थकता और बढी तथा इस प्रकार जिस शब्द का पुराना अर्थ 'विवाहिता स्त्री' था उसका अवनतिप्राप्त अर्थ 'भगायी हुई स्त्री' बनकर एक गाली बन गया।

'बाबू' शब्द बडे रोब और ठाठ का है। बाबू श्यामसुन्दरदास या बाबू सम्पूर्णानन्द आदि मे, या देहातो मे जमीदार आदि को 'बाबू' कहने में, या अपने पिता को 'बाबू' या बाबूजी कहने मे इसका वही ऊँचा अर्थ है। पर शहरो मे दफ्तर का बाबू एक वह व्यक्ति समझा जाता है जो दीनता, विवशता और 'बाहर लाँबी-लाँबी धोती, भीतर महुवा की रोटी'

की प्रतिमूर्ति है। 'बाबूगिरी करना' मे वही दीन-हीन अर्थ है।

गुरु जैसा भारतीय सस्कृति का पवित्र और गरिमामय शब्द भारतीय सस्कृति के केन्द्र काशी मे ऐसी विपन्नावस्था मे पहुँचा हुआ है कि तरस आता है। गुण्डे या बदमाशो की मण्डली मे इस शब्द का प्रयोग उस फन मे दक्ष व्यक्ति के लिए या हमजोली के लिए होता है। यो हिन्दी मे सामान्य प्रयोग है: 'वह तो बडा गुरु है'। ऐसे प्रयोगो मे 'गुरु' मक्कार या धूर्त का पर्याय है।

नट शब्द का प्राचीन अर्थ नाट्यकला मे प्रवीण व्यक्ति होता था। आज **नट** शब्द कभी तो उस घूमनेवाली जाति के लिए प्रयुक्त होता है जो गाँव-गाँव घूमती और भिक्षा, सगीत, पहलवानी, कसरत, जादू तथा चोरी आदि से अपनी जीविका चलाती है, और कभी-कभी यह शब्द 'पाखण्डी' या 'नखरेबाज' के लिए प्रयुक्त होता है। (मारो, साला नट है, इसका क्या विश्वास?)

आज **पाखण्ड** (पाषण्ड) का अर्थ ढोग या आडम्बर है। अशोक के समय मे इस नाम का एक साधुओ का सम्प्रदाय था, जो बडी श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था तथा जिसे अशोक ने स्वय आदर के साथ धन आदि दिया था। लगता है बाद मे इस सम्प्रदाय मे 'ढोग' आदि घर कर गये, अत. लोगो की श्रद्धा इसके प्रति घट गयी और इसका नाम **पाषण्ड** या **पाखण्ड** ढोग के अर्थ मे प्रयुक्त होने लगा। **चालाक** शब्द मे भी इसी प्रकार अब पतन आ गया है। इसका प्रारम्भिक अर्थ केवल 'चतुर' था, पर चूँकि आज के युग का **चालाक** 'मक्कारी' आदि अवगुणो से भी लैस रहता है, अत **चालाक** का अर्थ 'मक्कार' होने लगा है। **होशियार** तथा **चतुर** आदि भी धीरे-धीरे इसी अधोगति की ओर झुक रहे है।

'महाजनो येन गत. स पन्था' का **महाजन** (बडा आदमी) शब्द अब 'बनिया' के अर्थ मे प्रयुक्त होने लगा है। **श्रेष्ठ** शब्द अपनी श्रेष्ठता से उतरकर **सेठ** बनकर अब बनियो या व्यवसायियो का पर्याय हो गया है। 'भगवान्' का समानार्थी **ठाकुर** शब्द बगालियो मे अब रसोइये के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। दिल्ली तथा बम्बई मे **भैया** (भ्रातृवर का अर्थ रखने वाला) शब्द का अर्थ पूर्वी उत्तरप्रदेशीय या बिहारी मजदूर लिया जाता है।

अरबी का एक शब्द **खलीफा** लीजिए। इसका मूल अर्थ है 'उत्तराधिकारी'। मुहम्मद साहब क उत्तराधिकारियो के लिए इस शब्द का प्रयोग होता था जो आज भी मुसलमानो के प्रधान नेता[1] माने जाते है। मुसलमान बादशाहो को भी **खलीफा** कहा जाता रहा है। किन्तु आज हिन्दी-उर्दू मे **खलीफा** का कभी तो दरजी के लिए प्रयोग होता है, कभी 'हज्जाम' या 'नाई' के लिए, कभी 'पहलवान' या 'कुश्ती लडानेवाले' के लिए और कभी-कभी 'धूर्त' के लिए 'यार तुम भी **खलीफा** ही निकले !' इसका ही साथी एक दूसरा शब्द **हजरत** है। यह अरबी शब्द है जिसका अर्थ 'बुजुर्ग' होता है। मुहम्मद साहब के नाम के साथ लगाकर 'हजरत मुहम्मद' कहा जाता है। पर अब यह शब्द भी हिन्दी-उर्दू मे बहुत गिर गया है। 'तुम भी पूरे **हजरत** हो' प्रयोग चलता है। इस प्रकार इसका अर्थ शरारती या शैतान आदि होता है। हिन्दी का **चचा** शब्द भी इसी तरह गिर गया है।

फारसी का एक शब्द **मेहतर** है। इसका मूल अर्थ 'बुजुर्ग' या बेहतर' है। **मेहतर** 'जिब्रील' कहा जाता है, किन्तु हिन्दी प्रदेश के कई क्षेत्रो मे **मेहतर** जमादार या भगी को कहते है। इस शब्द की अवनति तो सीमा पार कर गयी है। **हलालखोर** शब्द भी इसी प्रकार का है। **हलाल** शब्द अरबी का है। इसका अर्थ 'वाजिब' या 'शरअ के अनुकूल' होता है। यह शब्द 'हराम' का उलटा है। 'खोर' शब्द फारसी का है, जिसका अर्थ 'खानेवाला' होता है। इस प्रकार **हलालखोर** वह हुआ 'जो वाजिब कमाई खाये'। इस दृष्टि से भला कौन **हलालखोर** होना न चाहेगा ! किन्तु हिन्दी के पूर्वी क्षेत्र मे **हलालखोर** या उसके बिगडे रूप 'हलखोर' का अर्थ है 'कूडा तथा पाखाना आदि साफ करनेवाला भंगी'। इस शब्द मे भी बहुत पतन हुआ है। यद्यपि यह कहना भी अनुचित नही है कि शायद **हलालखोर** भगी ही ससार मे सबसे अधिक 'हलाल की कमाई' खाते है। **दीवान** राजा के मन्त्री को कहते थे, पर अब तो हेड सिपाही भी **दीवान** कहलाता है।

---

१. अबूबक्र, उमर तथा उसमान आदि।

गँवार का अर्थ है गॉव का रहनेवाला। पर अब **गँवार** का अर्थ हो गया है 'मूर्ख' या 'उजड्ड' आदि। 'अहीर' एक जाति का नाम है, पर अब उसका भी अर्थ **उजबक** जाति की भाँति ही **गँवार**, उजड्ड आदि लिया जाता है।

भास के समय मे **महाब्राह्मण** का अर्थ 'उच्च कोटि का विद्वान् ब्राह्मण' था। आप्टे ने अपने सस्कृत कोष मे इसका पहला अर्थ 'विद्वान् पण्डित' ही दिया है। किन्तु अब तो **महाब्राह्मण** उस करटहा ब्राह्मण को कहते है, जो श्राद्ध आदि का निकृष्ट दान लेता है। अन्य ब्राह्मण तो उसको छूना तक पसन्द नही करते।

भद्र सस्कृत शब्द है जिसका अर्थ 'भद्र पुरुष' आदि के रूप मे भला या अच्छा होता है। **भद्र** शब्द ने विकसित होकर दो रूप धारण किये है। एक तो **भद्दा** जिसका अर्थ 'बुरा' तथा 'कुरूप' आदि होता है और दूसरा **भोदू** जिसका अर्थ 'मूर्ख' होता है। **भद्र** के **भद्दा** और **भोदू** दोनो ही रूपो मे उसकी कितनी अवनति हुई है, कहने की आवश्यकता नही।

देवप्रिय एक प्रयोग है जिसका अर्थ 'देवताओ का प्यारा' होता है। यह शिव का एक विशेषण समझा जाता था। इसी का एक रूप **'देवानां प्रियः'** है जिसका प्रयोग अशोक के लिए शिला-लेखो आदि पर मिलता है। बौद्ध-धर्म के पतन के बाद जब लोगो की धारणा इस धर्म के प्रति खराब हुई तो इस **देवानां प्रियः** का अर्थ बुरा हो गया। आज कोषो मे इसका अर्थ 'मूर्ख' मिलता है। 'काव्यप्रकाश' मे एक स्थान पर आया है—

तेप्यतात्पर्यज्ञा देवाना प्रिया।

जुगुप्सा शब्द का सम्बन्ध 'गुप्' धातु से है जिसका अर्थ छिपाना या गुप्त रखना आदि होता है। धीरे-धीरे छिपायी जानेवाली बात या चीज़ घृणित समझी जाने लगी और इस प्रकार **जुगुप्सा** अब 'घृणा' का पर्याय हो गया है।

महाराज (महाराजा से रसोइया), **बुरज़ुआ** (फ्रेंच शब्द है। पहले इसका अर्थ बडा आदमी था, किन्तु समाजवाद के प्रभाव से अब अर्थ बहुत गिर गया है।), **साहु** (मूल शब्द **साधु** है, पर अब इसका अर्थ बनिया है।), **पनारा** (मूल शब्द स० **प्रणाली**—शैली, रास्ता—है, पर अब पनारा

का अर्थ गन्दी नाली होता है।), **जमादार**(मूल अर्थ एक 'फौजी अफसर', आधुनिक अर्थ 'भगी'), **हरिजन** (मूल अर्थ भक्त, अब अछूत), **बाथरूम** (मूल अर्थ 'स्नानघर', अब पाखाना आदि), तथा **ट्वायलेट** (मूल अर्थ शृंगारघर, अब पाखाना आदि) आदि शब्दो की अवनति के अच्छे उदाहरण हैं।

कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि एक ही शब्द कुछ स्थलो पर तो अच्छा अर्थ देते है, पर कुछ स्थलो पर बुरा। कुछ उदाहरण लिये जा सकते है—

उन्नत अर्थ	अवनत अर्थ
कठोर कुच	कठोर व्यक्ति
काली घटा	काला आदमी
मोटा आसामी	मोटी अक्ल
टेढ़ा बाल	टेढ़ा आदमी
मीठा पानी	मीठा बैल
सफेद वस्त्र	सफ़ेद बाल

शब्दो की अवनति के सम्बन्ध मे एक और बात द्रष्टव्य है। शरीर के जो अग सबके सामने नही खोले जा सकते तथा जो कार्य सबके सामने नही किये जा सकते, उनसे सम्बन्धित सर्वसामान्य मे प्रचलित शब्द इतने अवनत या गिरे समझे जाते हैं कि उनका लोग उच्चारण भी नही करते। लिग, गुदा, भग, कुच, पाखाना, पिशाब, पाखाना करना, सम्भोग करना आदि के लिए सर्वसामान्य मे, विशेषत· अशिक्षितो मे, प्रचलित शब्दो की यही दशा है। उन्हे बहुत-से लोग तो अकेले मे भी उच्चरित नही कर सकते। इन शब्दो की सर्वदा यही दशा नही थी। जब ये शब्द अशिक्षितों मे प्रचलित न रहे होंगे तो इस समय की अपेक्षा अवश्य ही उन्नत रहे होगे। आज के लिग, गुदा, भग तथा सम्भोग करना आदि शब्द यदि सर्वसाधारण एव अशिक्षितो में प्रचलित हो जायँ तो कल इनकी भी यही अवनत दशा होगी।

शब्दो की अवनति के सम्बन्ध मे एक तीसरी बात यह भी है कि कुछ शब्द ऐसे भी मिलते हैं जो अपने मूल रूप मे तो उन्नत हैं, पर विकृत

रूप मे अवनत है। **गर्भिणी** का अर्थ है गर्भवती। इसका प्रयोग मनुष्य या पशु किसी के लिए हो सकता है, पर गर्भिणी से ही निकला शब्द **गाभिन** अपेक्षाकृत गिरा हुआ है और केवल पशुओ के लिए प्रयुक्त होता है। इस प्रकार के कुछ शब्दो की सूची यहाँ दी जाती है—

मूल शब्द	अर्थ या प्रयोग	विकृत शब्द	अर्थ या प्रयोग
स्तन	स्त्री आदि का स्तन	**थन**	केवल गाय, भैंस या बकरी आदि का थन
बज्रबटुक	पक्का ब्रह्मचारी	**बजरबट्टू**	मूर्ख
प्रणाली	शैली, तरीका	**पनारा, पनारी**	गन्दी नाली
ब्राह्मण	योग्य पण्डित	**बाम्हन**	निरक्षर, पोगा
साधु	सज्जन, सन्त	**साहु**	बनिया
वार्ता	कथा-वार्ता के रूप मे प्रयुक्त	**बात**	कोई भी अच्छी-बुरी बात
पुगव	होशियार	**पोगा**	मूर्ख

इस प्रकार अवनति करने मे भी 'शब्द' आदमियो से पीछे नही है।

११ :: शब्द दुबले होते हैं

'दुबला' होने के दो अर्थ है। यह शब्द संस्कृत शब्द 'दुर्बल' से निकला है, अत धात्वर्थ की दृष्टि से इसका अर्थ है 'बल मे कम', किन्तु प्रयोगत यह 'मोटाई' मे अर्थात् 'कृशता' का पर्याय है। 'आप दुबले हो रहे है' का अर्थ है 'आप मोटाई मे कम या कृश हो रहे है।' मोटाई मे कम होने पर आप पहले की अपेक्षा कम जगह घेरेगे। इस प्रकार प्रयोगत दुबले होने का अर्थ है अपेक्षाकृत कम जगह घेरना। शब्द भी अर्थ की दृष्टि से कभी-कभी पहले की अपेक्षा कम जगह घेरने लगते है, अत उनकी इस दशा को 'दुबला होना' कहे तो अनुचित न होगा। एक उदाहरण इस बात को अधिक स्पष्ट कर देगा। **जलज** शब्द का मूलत अर्थ है 'जल मे पैदा होने वाला'। इस प्रकार आरम्भ मे जल मे जन्मनेवाले कमल, मछली, जोक, सेवार, घोघा, शंख आदि असंख्य चीजो का **जलज** से बोध होता रहा होगा। **जलजाजीव** शब्द, जिसका अर्थ मछली आदि पर अपनी जीविका चलानेवाला होता है, अब भी उस प्राचीन अर्थ की याद दिलाता है। किन्तु आज **जलज** शब्द केवल 'कमल' के लिए प्रयुक्त होता है। तुलसीदास जी लिखते है—

जलज जोक जिमि गुण बिलगाही।

कहना न होगा कि उस विस्तृत अर्थ से, जिसमे जल मे जन्मनेवाली सभी चीजे आती थी, यह शब्द केवल कमल (उनमे से मात्र एक) का

वाचक हो गया है, अत निश्चय ही अर्थ की दृष्टि से यह कम स्थान घेर रहा है और इस प्रकार यह दुबला हो गया है।

शब्दो के इस दुबलेपन को भाषा-विज्ञान की भाषा मे 'अर्थ-सकोच' कहते है। यह सकोच, सिकुडना या दुबलापन ससार की सभी भाषाओ मे पाया जाता है। अर्थ-विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् 'ब्रील' ने अपनी फ्रासीसी पुस्तक 'एस्से द सेमेन्तीक' मे इस विषय पर विचार करते हुए लिखा है कि जो भाषा जितनी ही समुन्नत होगी, उसके शब्दो मे यह दुबलापन उतना ही अधिक मिलेगा। इसका कारण यह है कि सभ्यता के विकास के आरम्भ मे मनुष्य का ध्यान मोटी-मोटी बातो या चीजो की ओर ही जाता है, जैसे जल मे होनेवाली सभी चीजो के लिए **जलज** का प्रयोग किया गया तथा इस पर अपनी जीविका चलानेवाले को 'जलजाजीव'। किन्तु बाद मे जल के भीतर की विभिन्न वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त हुआ तो यह **जलज** सज्ञा किसी एक को देनी पडी तथा शेष के लिए अन्य नाम बनाने पडे। यही दशा **मृग** की भी है। '**मृग**' का प्राचीन अर्थ 'पशु' है। इसी आधार पर पशुओ के राजा सिंह को 'मृगेन्द्र' या 'मृगराज' कहते है। 'मृगया' (शिकार) शब्द या 'मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति' श्लोकाग भी उस प्राचीन अर्थ की ओर ही सकेत कर रहे हे। किन्तु बाद मे जब बहुत-से पशु अलग-अलग ज्ञात हुए और सभी को नाम देना पडा तो **मृग** को 'हिरन' का वाचक माना गया तथा अन्य पशुओ को और नाम दिये गये।

प्रसिद्ध सस्कृत शब्द **गो** का अर्थ तो और भी विस्तृत था। **गो** 'गम्' धातु से बना है, अत मूलत ससार मे जो भी चलते है (मनुष्य, पशु, पक्षी, जलचर तथा तीर आदि) सभी **गो** की सज्ञा के अधिकारी थे। आज भी कोषो मे इसके गाय, बैल, किरण, जल, पशु, चॉद, हवा, सूर्य, दृष्टि तथा बाण आदि अनेक अर्थ मिलते है जो इसके मूल अर्थ की याद दिलाते है। किन्तु, अब यह 'गो' बेचारा बहुत ही दुबला हो गया है और केवल 'गाय' के लिए प्रयुक्त होता है। शायद इतना दुबला होने पर कोई दूसरा रहता तो मर जाता, किन्तु यही एक ऐसा है जो कलेजे पर पत्थर रखकर अब भी अपनी जीवन-नैया खीचे जा रहा है।

ग्रीक भाषा का प्रसिद्ध शब्द **बाइबल** लीजिए। इसका मूल अर्थ है 'पुस्तक', पर अब दुबला होकर यह केवल ईसाइयो की धर्म-पुस्तक के लिए ही प्रयुक्त होता है। अब तो इसका नवीन अर्थ इतना प्रचलित हो गया है कि इसकी उस दशा का किसी को ध्यान भी नही है, जब यह अत्यन्त स्वस्थ और मोटा था अर्थात् इससे किसी भी पुस्तक का बोध हो सकता था। सत्य है, वर्तमान के आगे भूत को कौन देखता है! यो अग्रेज़ी शब्द 'बिबिलियोग्राफी' मे आज भी इसके मूल अर्थ के अवशेष है।

मूलत 'धन' के आधार का नाम 'धान्य' है। पहले धन विशेषत अन्न से मिलता था, अत 'धान्य' का अर्थ अन्न-मात्र था, पर अब यह बेचारा दुबला हो गया है और **धान** (धान्य से निकला या विकसित) केवल एक अन्न के लिए प्रयुक्त होता है जिससे चावल निकलता है। अग्रेजी का **कॉर्न** (Corn) शब्द भी इसी प्रकार का है। यो उसका अर्थ अन्न होता है किन्तु अमरीका का कभी प्रधान अन्न मक्का होता था, अत अमरीका मे **कॉर्न** का अर्थ केवल मक्का होता है।

कुछ और उदाहरण लीजिए। 'ख' का अर्थ है 'आकाश' और 'ग' का अर्थ है 'गमन करनेवाला'; इस प्रकार '**खग**' वह है जो आकाश मे गमन करे। इस दृष्टि से **खग** से सूर्य, चन्द्रमा, तारे, हवाई जहाज़, पक्षी, बाण तथा वायु आदि बहुत-सी चीजो का बोध होता है। 'आप्टे' के सस्कृत कोष मे ये अर्थ है भी। इसका अर्थ यह है कि कभी साहित्य मे भी 'खग' शब्द इन विभिन्न अर्थो मे प्रयुक्त होता था। 'महाभारत' मे वायु अर्थ मे एक प्रयोग देखिए—

तमासीव यथा सूर्यो वृक्षानग्निर्धनान्खग ।

'अस्ताचल' का एक पर्याय 'खगासन' मिलता है और यह इस बात की ओर सकेत करता है कि 'खग' का 'सूर्य' अर्थ मे भी प्रयोग होता था। दूर जाने की आवश्यकता नही, हिन्दी के प्रसिद्ध कवि नन्ददास ने अपनी 'अनेकार्थ मजरी' मे लिखा है—

खग रवि, खग ससि, खग पवन, खग अबुद, खग देव।
खग बिहग हरि सुतरु तजि भज जड सेवल सेव ।।

किन्तु अब 'खग' का प्रयोग केवल 'पक्षी' के लिए होता है। इसका भी दुबलापन बडा ही दयनीय है।

रसाल का अर्थ है 'रस से पूर्ण'। इस दृष्टि से अंगूर, मुसम्मी और नीबू से लेकर रसभरी तक तथा रसगुल्ले से लेकर रसमलाई तक सभी **रसाल** कहलाने के अधिकारी है। पर आज केवल 'आम' को ही **रसाल** कहलाने का सौभाग्य प्राप्त है। जहाँ एक ओर आम के लिए यह सौभाग्य की बात है, 'रसाल' शब्द के लिए दुर्भाग्य की बात है, क्योकि उसे दुबला हो जाना पडा है।

जिसका भरण-पोषण किया जाय वही **भार्या** है। इस दृष्टि से प्रत्येक छोटी दुधमुँही बच्ची इस शब्द की सबसे बडी अधिकारिणी है। किन्तु आज **भार्या** शब्द केवल 'पत्नी' के लिए प्रयुक्त होता है। यह बात दूसरी है कि आज की कुछ भार्याएँ अपने पति का ही भरण-पोषण करती है और इस दृष्टि से न्यायत· ऐसे पति ही 'भार्या' नाम के अधिकारी है।

'श्रद्धा' से किया गया प्रत्येक कार्य **श्राद्ध** है, पर अब केवल मरे हुए व्यक्ति की अन्त्येष्टि क्रिया को ही श्राद्ध कहते है। आज यदि किसी को श्रद्धा से आमन्त्रित करे और उसके आने पर कहे कि "हम लोग आपका **श्राद्ध** कर रहे है" तो वह शायद बिगड खडा होगा।

वेदना का सम्बन्ध सस्कृत की 'विद्' धातु से है, जिसका अर्थ 'जानना' होता है। इस प्रकार सुख का ज्ञान और दुख का ज्ञान दोनो **वेदना** मे निहित है। पर आज केवल दुख के ज्ञान के लिए **वेदना** का प्रयोग होता है। प्रसाद लिखते हैं—

आह ! वेदना मिली विदाई।

वत्स, बाछा, बछेड़ा, पाड़ा, छौना, मेमना, शावक, पोआ, पिल्ला, तथा **चूजा** सभी का मूलत अर्थ बच्चा है पर अब **वत्स** मनुष्य के बच्चे को, **बाछा** गाय के बच्चे को, **बछेड़ा** घोडे के बच्चे को, **पाडा** भैस के बच्चे को, **छौना** हिरन के बच्चे को, **मेमना** भेड के बच्चे को, **शावक** पशु तथा पक्षी के बच्चे को, **पोआ** साँप के बच्चे को, **पिल्ला** कुत्ते के बच्चे को तथा **चूजा** मुर्गी के बच्चे को कहते है। कहना न होगा कि ये सभी दुबले हो गये हैं।

मूलतः **घृत** उसे कहते है जिससे सीचा जाय। इसी कारण कोषो[1] मे **घृत** का अर्थ 'घी' के साथ-साथ 'पानी' भी मिलता है। पर आज **घृत** केवल घी के लिए प्रयुक्त होता है।

मुर्ग फारसी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ 'पक्षी' होता है। शुतुरमुर्ग (जिसका अर्थ 'वह पक्षी जो ऊँट (शुतुर) की तरह हो' होता है) मे **मुर्ग** का यह अर्थ स्पष्ट है, किन्तु अब **मुर्ग** एक विशेष पक्षी के लिए प्रयुक्त होने लगा है।

रदन का मूल अर्थ है वह चीज जिससे किसी को फाडा जाय। इस दृष्टि से 'कुल्हाडी' और 'आरा' आदि **रदन** कहलाने के अच्छे अधिकारी है, पर अब केवल दाँत को **रदन** कहते हैं।

इन्सान का सम्बन्ध अरबी शब्द 'निसियान' (भूलना) से है। अर्थात् **इन्सान** वह है जो भूल करे। इस दृष्टि से सभी जीव (एक खुदा को छोडकर) 'इन्सान' है। कुछ लोग 'इन्सान' का सम्बन्ध अरबी शब्द उन्स (प्रेम) से मानते है। अर्थात् **इन्सान** वह है जो प्यार करे। इस दृष्टि से तो क्या चीता, क्या हाथी, क्या मनुष्य और क्या भगवान् (जो प्रेम के भण्डार हैं) सभी **इन्सान** है, पर आज **इन्सान** केवल आदमी को कहते हैं। कभी-कभी तो उस आदमी को ही **इन्सान** कहते है, जिसमे 'इन्सानियत' हो 'आदमी को भी मयस्सर कहाँ इन्साँ होना'।

'विश्' का प्राचीन अर्थ मनुष्य-मात्र है। वेदो मे यह शब्द सभी के लिए आया है। उससे बना 'वैश्य' का भी अर्थ वेदो मे 'सामान्य जनता' लिया गया है। **वेश्या** (जो **वैश्य** का स्त्रीलिंग है तथा जिसका अर्थ सामान्या या सामान्य स्त्री होता है, जो जनता के लिए हो) शब्द आज भी उस पुराने अर्थ की याद दिलाता है। किन्तु आज **वैश्य** का अर्थ केवल 'बनिया' ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, को छोडकर (चौथा वर्ण) होता है।

सक्षेप मे कुछ और उदाहरण लीजिए। पुर (शरीर) मे रहनेवाली सभी आत्माएँ 'पुरुष' हैं, पर केवल मर्द (स्त्री नही) के लिए इसका प्रयोग होता है। जो बढे वह **द्रुम** है, पर आज केवल लता या पेड आदि को ही **द्रुम**

---

१ देखिए, 'सस्कृत इंगलिश डिक्शनरी'—आप्टे।

कहते है। **दुहिता** वह है जो गाय दूहे। किन्तु आज इसका सीधा-सादा अर्थ 'लडकी' है। 'ननद' (ननान्दृ) वह है जो भौजाई को सताये। इस दृष्टि से वे देवर भी तो **ननद** हैं जो भौजाई को सताते है, किन्तु आज केवल पति की बहन ही 'ननद' है। 'वह्नि'[1] वह है जो वहन करे, ढोये या ले जाय। इस दृष्टि से रेल, मोटर, साइकिल तथा इक्के आदि सभी **वह्नि** हैं और आग से ज्यादा इस नाम के अधिकारी है, किन्तु आज केवल आग को **वह्नि** कहते है। **कष्ट** का धातु की दृष्टि से अर्थ है 'वह जिससे परीक्षा हो।' पर इस दृष्टि से इम्तहान ही सबसे बडा **कष्ट** है तथा और भी बहुत-सी चीज़े और बाते **कष्ट** है, किन्तु आज केवल 'दु ख' को कष्ट कहते है। मज़ा तो यह है कि बहुत-से कष्ट ऐसे भी है जिनसे परीक्षा का कोई सम्बन्ध भी नही है। **चार्वाक** वह है जिसकी बोली मीठी हो (चारु-वाक्)। किन्तु आज केवल अनीश्वरवादियो को 'चार्वाक' कहते है। यद्यपि सभी कभी-न-कभी मीठी बोली बोलते है, अत इस दृष्टि से सभी **चार्वाक** हैं।

शब्दो के दुबले होने मे कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि मूल शब्द तो अपने प्राचीन अर्थ मे प्रयुक्त होता है किन्तु उससे विकसित उसी भाषा, उसी भाषा की किसी बोली या किसी अन्य भाषा मे प्रयुक्त शब्द दुबला हो जाता है। 'मूल' शब्द हिन्दी मे अपने मूल अर्थ 'जड' के लिए प्रयुक्त होता है।' किन्तु उसी 'मूल' से विकसित **मूली** शब्द केवल एक तर-कारी-विशेष की जड के लिए प्रयुक्त होता है। **कीट** शब्द का अर्थ रेंगने वाला जीव है। हिन्दी मे आज भी इसका प्राय. यही अर्थ है, किन्तु भोज-पुरी मे इसी से विकसित शब्द **कीरा** केवल साँप के लिए प्रयुक्त होता है। **गन्ध** के सम्बन्ध मे भी यही बात हैं। **गन्ध** का अर्थ है महक, जिसमे अच्छी और बुरी (दुर्गन्ध और सुगन्ध) दोनो सम्मिलित है, पर अवधी मे **गँधाना** का अर्थ केवल 'बदबू करना' होता है। इसी प्रकार **बास** का अर्थ भी 'महक' है, पर भोजपुरी मे 'बसाना' का अर्थ 'बदबू करना' होता है। 'गँधाना' की भाँति ही यह दुबला हो गया है। दिल्ली मे तथा आसपास

---

१. आग हवन की हुई वस्तुओ को देवताओ तक ले जाती थी, अतः कर्मकाण्डियो ने इसे 'वह्नि' की सज्ञा दी।

'बू' का अर्थ 'बदबू' है जबकि मूलत यह 'बू' है, न बदबू न ख़ुशबू। सस्कृत का प्रसिद्ध ज़हरवाची शब्द **विष** है। आज भी सस्कृत या हिन्दी आदि मे **विष** का अर्थ ज़हर ही होता है, पर अरबी मे पहुँचकर यह शब्द 'बेख़' हो गया है और वहाँ इसका प्रयोग सामान्य जहर के लिए न होकर एक ख़ास जहर के लिए होता है।

ज़नाना शब्द फारसी का है जिसका अर्थ 'औरत' या 'औरतो का' होता है। किसी भी चीज़ के लिए इसका प्रयोग कर सकते है। जनाना महल, जनानी बोली, जनाना कपडा, ज़नानी चाल तथा जनानी लिखावट आदि। पर वही **ज़नाना** शब्द अंग्रेज़ी मे जाकर 'Zenana' हो गया है और वहाँ इसका अर्थ केवल जनाना महल या 'ज़नानखाना' होता है। **पंकज** (मूलतः पंक मे जन्मी कोई भी चीज), **विद्यार्थी** (कोई भी जो विद्या चाहे), **सब्जी** (कोई भी हरी चीज) भी इसके अच्छे उदाहरण है।

शब्दो के दुबले होने के विषय मे एक और बात भी द्रष्टव्य है। कभी-कभी ऐसे भी अर्थ-सकोच देखने मे आते है जहाँ एक ही शब्द सन्दर्भ-विशेष मे अपना विशेष सकुचित या दुबला अर्थ रखता है और यो विस्तृत अर्थ। यो कोई भी गोल वस्तु **गोली** कही जा सकती है, पर सिपाही की **गोली**, दर्जी की **गोली** खिलाडी की **गोली** तथा वैद्य की **गोली** इन सबमे 'गोली' का अर्थ सीमित हो गया है। **क़लम** शब्द भी इसी प्रकार का है। शिशु कक्षा के विद्यार्थी का **क़लम** (सरकण्डे का कलम) मिडिल के विद्यार्थी का क़लम (होल्डर या निब), एम० ए० के विद्यार्थी का **कलम** (फाउण्टेनपेन), माली का **क़लम** (पेडो को कलम करना) तथा नाई का **कलम** (कान के पास के बाल सीधे काटना)—ये सभी भिन्न और सीमित हैं। यो 'कलम' का धात्वर्थ है 'वह जो काटा जाय।' यह बात दूसरी है कि 'बात' भी काटी जाती है, पर उसे कलम कहने की धृष्टता शायद कभी किसी ने नही की। साडी तथा नदी के **किनारे**, या अन्धे, चरवाहे तथा जादूगर का **डण्डा**, ये सब भी इस वर्ग के अच्छे उदाहरण है।

किसी के दुबले होने पर प्रसन्न होना या किसी के दुबले होने की कामना करना तो नीचता होगी, किन्तु जैसा कि ऊपर ब्रील का मत देते हुए कहा जा चुका है कि जो भाषा जितनी ही समुन्नत होगी उसमे शब्दो के

दुबले होने के उदाहरण उतने ही अधिक मिलेंगे, हम यहाँ अन्त में नीच की संज्ञा स्वीकार करते हुए भी राष्ट्रभाषा के हितार्थं कामना कर सकते है कि हिन्दी के अधिकाधिक शब्द दुबले हों और इस प्रकार वह अधिकाधिक समुन्नत हो।

१२ : : शब्द घिसते हैं

जीवन के उत्थान-पतन, सुख-दु ख एवं फूल-काँटो का सामना करते-करते आदमी वृद्ध हो जाता या घिस जाता है। शब्द भी इसी प्रकार घिस जाते है।

उपाध्याय हमारा परिचित शब्द है। यो इसका अर्थ शिक्षक, आचार्य या गुरु होता है, किन्तु तिवारी, पाण्डे, द्विवेदी, चतुर्वेदी और पाठक आदि की भाँति ब्राह्मणो की यह एक पूँछ भी है। इसी भाँति ब्राह्मणो की दो पूँछे **ओझा** तथा **झा** भी है। भाषा-शास्त्रियो का कहना है कि **उपाध्याय** शब्द ही घिसकर **ओझा** हुआ है और फिर **ओझा** घिसकर **झा** हो गया है। बेचारा कहाँ तो अच्छा-खासा आठ फुट (आठ वर्ण) का कद्दावर जवान था और कहाँ घिस-घिसाकर 'झा' के रूप मे दो फुट (वर्ण) का बौना रह गया है।

शब्दो के घिसने मे कुछ ध्वनियो का लोप हो जाता है। लोप सामान्यत तीन प्रकार का होता है—(१) स्वर लोप, (२) व्यजन लोप, (३) अक्षर (syllable) लोप। पुन इन तीनो के तीन-तीन भेद हो सकते है—(१) आदि लोप, (२) मध्य लोप, (३) अन्त लोप। इस प्रकार लोप को कुल नौ वर्गों मे रखा जा सकता है।

(१) आदिस्वर लोप—इसमे आरम्भ के स्वर के लुप्त हो जाने के कारण शब्द घिस जाता है या उसकी लम्बाई कम हो जाती है। जैसे

अनाज से **नाज, अंगर** से **गर, एकादश** से **ग्यारह, अरघट्ट** से **रहँट** तथा **आभ्यन्तर** से **भीतर** आदि।

(२) मध्य स्वर लोप—इसमे बीच के स्वर का लोप हो जाता है। उदाहरणत **शाबाश** से **साबस** तथा अंग्रेजी मे do not से dont आदि। हिन्दी मे तो इधर बहुत-से शब्दो मे मध्य स्वर लोप हो गया है, यद्यपि अभी लोग लिखते नही। बोलने की दृष्टि से **बलदेव** का **बल्देव, कृपया** का **कृप्या** तथा **चलता** का **चल्ता** आदि द्रष्टव्य है।

(३) अन्त स्वर लोप—इसमे शब्दान्त का स्वर लुप्त हो जाता है। हिन्दी के तो आज के सभी शब्द, जिनके अन्त मे सस्कृत मे 'अ' था, इसके उदाहरण बन गये है। हम लोग **राम** न कहकर **राम्** कहते है। इसी प्रकार 'मोहन्', 'पाप्', 'हम्', 'आप्' तथा 'तुम्' आदि।

(४) आदि व्यंजन लोप—इसमे आरम्भ के व्यजन का लोप हो जाता है। **स्थान** से **थान** तथा **श्मशान** से **मसान**। अंग्रेज़ी मे बहुत-से शब्दों मे उच्चारण की कठिनाई से यह लोप हो गया है, यद्यपि अभी तक लोग लिखते पुरानी ही तरह से है। हाँ, अमरीका मे अवश्य इस प्रकार के कुछ अक्षरो को लिखने मे भी छोडा जा रहा है। कुछ उदाहरण लिये जा सकते हैं—

लिखित रूप	उच्चरित रूप	लिखित रूप	उच्चरित रूप
knife	nife	know	no
Gnaw	naw	write	rite

(५) मध्य व्यजन लोप—इसमे बीच के व्यजन का लोप हो जाता है। उदाहरणत **सूची** से **सूई, घर-द्वार** से **घर-बार, कार्तिक** से **कातिक** तथा **कोकिल** से **कोइल** (कोयल) आदि। प्राकृत भाषाओ मे इस प्रकार के बहुत उदाहरण मिलते है। नमूने के लिए **बचन** से **बअण** देखा जा सकता है। ग्रामीण हिन्दी भी इसके उदाहरणो से भरी पडी है। **भूमिहार** से **भुइँहार** या **उपवास** से **उपास** आदि। अंग्रेजी मे भी वाल्क (walk) के उच्चरित रूप **वाक**, टाल्क (talk) के उच्चरित **रूप टाक** या आफ्टेन (often) के उच्चरित रूप ऑफ्न मे यही बात है।

(६) अन्त व्यंजन लोप— इसमे अन्त का व्यंजन लुप्त हो जाता

है। उदाहरण के लिए सस्कृत **निम्ब** से हिन्दी **नीम** या **जीव** से **जी** या अग्रेजी bomb से 'बम' आदि देखे जा सकते है।

(७)आदि अक्षर (स्वर+व्यजन) लोप—इसमे आरम्भ के अक्षर (syllable) का लोप हो जाता है। जैसे **आदित्यवार** से **इतवार**।

(८) मध्य अक्षर लोप—इसमे मध्य के अक्षर का लोप हो जाता है, जैसे **बरुजीवी** से **बरई**, **राजपुत्र** से **राउर** तथा **फलाहारी** से **फलारी** या **फलाहार** का **फलार** आदि।

(९) अन्त अक्षर लोप—इसमे अन्तिम अक्षर का लोप हो जाता है। उदाहरण के लिए **मौक्तिक** से **मोती**, **माता** से **माँ** तथा **भ्रातृजाया** से **भावज** आदि।

इन नौ के अतिरिक्त एक और लोप होता है जिसे समध्वनि लोप कहते है। इसमे यदि दो समान वर्ण एक स्थान पर रहते है तो उच्चारण की सुविधा के लिए एक का लोप हो जाता है। जैसे **नाककटा** से **नकटा**, parttime से partime, **खरीददार** से **खरीदार** तथा **मानस-सरोवर** का **मानसरोवर** आदि।

शब्दो के घिसने या छोटे होने का यह तो शास्त्रीय विवरण था। अब कुछ मनोरजक उदाहरण लिये जा सकते है।

व्यंजनपूर्व 'स्' से आरम्भ होनेवाले कई शब्दो पर जाने कौन ग्रह सवार था कि बेचारे घिसकर छोटे हो गये। **स्थाली** थाली रह गयी है, मध्य काल मे **स्थल** बेचारा **थल** हो गया, **स्नेह** का **नेह** बचा और **स्थाणु** का केवल **थूनी** शेष है। इसी प्रकार संस्कृत के बहुत-से सख्यावाची शब्द हिन्दी मे घिसकर बहुत छोटे हो गये हैं।

संस्कृत	हिन्दी
चत्वारि	चार
ऊनविंशति	उन्नीस
त्रयोविंशति	तेईस
षट्त्रिंशत्	छत्तीस
उनपचाशत	उनचास
एकोनाशीति	उनासी

दो पहियो की गाडी होने के कारण **साइकिल** का पहला नाम **बाइ-साइकिल** या **बाइसिकिल** था। बाद मे घिसकर यह **साइकिल** रह गया। **अक्षवाटक** बेचारा दिन-रात कुश्ती, कसरत और पहलवानो के साथ मे रहता है, फिर भी मोटा होने की कौन कहे, इसका शरीर उलटे घिसकर **अखाड़ा** हो गया है। **उपानहिका** का घिसकर **पनही** होना तो स्वाभाविक है, क्योकि सभी इसे पैरो तले रगडते है। **शाटिका** और **अधोवस्त्रिता** शायद रोज़ धोये जाने के कारण घिसकर **साड़ी** और **धोती** हो गये है। **आरात्रिक** का **आरती**, **अनध्याय** का **अंझा**, **अक्षय तृतीया** का **आखातीज** तथा **मृत्तिका** का **मिट्टी** भी इसके अच्छे उदाहरण हैं।

शब्दो का इस प्रकार घिसकर छोटा होना सभी भाषाओ मे पाया जाता है। इसके कई कारण है। कभी-कभी तो उच्चारण की सुविधा के लिए ही शब्द घिस जाते है। **स्थाली** का **थाली** या **क्नाइफ** knife का **नाइफ** इसीलिए हुआ है। शालिग्राम के पत्थर नदी मे चलते-चलते घिसकर चिकने तथा सुन्दर हो जाते है। इसी प्रकार शब्द भी घिसकर चिकने तथा सुन्दर हो जाते हैं। सस्कृत का **अग्रहायण** शब्द घिसकर हिन्दी मे **अगहन** हो गया है। दोनो को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि एक कुडौल और ऊबड-खाबड है तो दूसरा सुडौल। इस प्रकार हम देखते है कि घिसने से भाषा मे कोमलता आती है और उसकी 'रवानी' मे वृद्धि हो जाती है। इसी दृष्टि से प्राकृतवाले प्राकृत को सस्कृत से कोमल कहते थे।

कभी-कभी सक्षेप के लिए जान-बूझकर हम लोग शब्दों को घिस देते है या काटकर छोटा कर देते है। आजकल समय की कमी और व्यस्त जीवन के कारण यह प्रवृत्ति और बढ गयी है। यदि **रामगोपाल सिनहा** कहना हो तो **आर० जी० सिनहा**, **रा० गो० सिनहा** या केवल **सिनहा** कहकर हम काम चलाते हैं। **यूनाइटेड स्टेट ऑफ अमेरिका** का **यू० एस० ए०**, **उत्तर प्रदेश** का **यू० पी०**, **मध्यप्रदेश** का **एम० पी०**, **यूरोप-एशिया** का **यूरेशिया**, **भारत-यूरोपीय** का **भारोपीय**, सयुक्त विधायक दल का 'सविद', आन्तरिक सुरक्षा कानून का 'आमुका' तथा 'भारतीय लोक दल' का 'भालोद' आदि इसके प्रचलित अच्छे उदाहरण हैं।

ये सक्षेप तो व्यक्तिवाचक सज्ञाओ के है। जातिवाचक मे भी इसके उदाहरण मिल जाते हैं। **रेल रेलगाड़ी** की लाइन या पटरी को कहते है। **रेल** पर चलने के कारण ट्रेन को **रेलगाड़ी** कहते है, पर, अब **रेलगाड़ी** को सक्षेप करके केवल **रेल** या **गाड़ी** कहने की प्रवृत्ति चल पडी है। इसी प्रकार **तार की खबर** के लिए अब हम केवल **तार** कहकर काम चलाते है। हाथी का पुराना नाम **हस्तिन् मृग** (हाथवाला जानवर) है। बाद मे इसका **मृग** शब्द टूटकर अलग हो गया और **हस्तिन्** ही हाथी के लिए प्रयुक्त होने लगा। **रेलवे स्टेशन** से **स्टेशन, मोटरकार** से **कार** या **मोटर, कैपिटल सिटी** से **कैपिटल** तथा **प्रिंसिपल टीचर** से **प्रिंसिपल** भी इसके अच्छे उदाहरण है।

इस प्रकार शब्द कभी तो भाषा के प्रवाह मे स्वय घिसकर छोटे हो जाते हैं और कभी-कभी बोलनेवाले अपनी सहूलियत के अनुसार घिसकर या काटकर उन्हे छोटा कर लेते है। शब्दो का इस प्रकार घिसा-कटा रूप भाषा को सरल, सक्षिप्त और प्रवाहपूर्ण बनाता है।

१३ : : शब्द मरते हैं

'धरा को प्रमान यही तुलसी, जो फरा सो झरा, जो बरा सो बुताना' ।
—तुलसी

ससार मे जो पैदा होता है, मरता है । शब्द भी इसके अपवाद नही । वे भी पैदा होते है और मरते है । प्रत्येक भाषा का एक अपना 'शब्द-भण्डार' या 'शब्द-समूह' होता है । वह सर्वदा एक स्थिति में नही रहता । उसमे हमेशा परिवर्तन होते रहते हैं। ये परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं—

१. नवीन शब्दो का आगमन

२. प्राचीन शब्दो का लोप

पहला कारण नवीन शब्दो का आगमन है । आगमन भी दो प्रकार से होते हैं । कुछ शब्द तो दूसरी भाषाओ से चले आते हैं, जिन पर सक्षेप मे 'शब्द चलते हैं' शीर्षक अध्याय मे विचार किया जा चुका है । कुछ शब्द बनते, बनाये जाते या पैदा होते है, जिन पर 'शब्द जनमते हैं' शीर्षक अध्याय मे विचार किया गया है । शब्द-समूह मे परिवर्तन का दूसरा कारण 'प्राचीन या प्रचलित शब्दो का लोप' है । यही शब्दो का 'मरना' है । जिस शब्द का लोप हो जाता है या जिसका प्रयोग बन्द हो जाता है, वह मर जाता है ।

शब्दो का मरना दो प्रकार का होता है । कभी-कभी तो शब्द सच-मुच मर जाते हैं । आशय यह है कि बोल-चाल और साहित्य से तो निकल

ही जाते हैं, कोषों मे भी उनका नाम-निशान नही रह जाता। इस प्रकार हम उन्हे पूर्णत भूल जाते है। वैदिक काल के जाने कितने प्रयुक्त शब्दो का आज हमे बिल्कुल पता नही है। इस प्रकार की मृत्यु केवल ऐसे शब्दो की होती है जो केवल बोल-चाल तक सीमित रहते है, क्योकि साहित्य में प्रयुक्त शब्द तो पुस्तको मे आ जाने के कारण प्रयोग मे न रहने पर भी अपनी निशानी छोड जाते है, किन्तु दूसरी ओर बोल-चाल के वे शब्द जो साहित्य मे या कोश आदि मे नही आ पाते, बोल-चाल से निकलने पर सर्वदा के लिए लुप्त हो जाते है और उनकी यथार्थतः मृत्यु हो जाती है।

शब्दो का दूसरे प्रकार का 'मरना' उस समय होता है जब शब्द बोल-चाल से निकलकर केवल साहित्य मे, या साहित्य से निकलकर केवल कोषो मे रह जाते हैं। इस मृत्यु को आंशिक मृत्यु कह सकते है।

शब्दो का लोप (या उनकी मृत्यु) कई कारणो से होता है। कुछ प्रधान कारण यहाँ देखे जा सकते है—

क. रीतियों और कर्मों का लोप

समाज परिवर्तनशील है। सर्वदा एक प्रकार के कार्य नही होते और न सर्वदा सामाजिक रीतियाँ ही एक-सी रहती हैं। ऐसी दशा मे जिन कर्मों या रीतियो का लोप हो जाता है उनसे सम्बन्धित शब्द भी प्रयोग मे न आने के कारण लुप्त हो जाते है। वैदिक समाज मे 'यज्ञ' का बहुत प्रचलन था, आज उसका प्रचलन नही है अत उसकी शब्दावली से हम बिल्कुल अपरिचित हो गये है। इस प्रकार आज वे शब्द अब मर गये है। यज्ञ-विषयक इस प्रकार के मृत शब्दो मे न्यूडख, स्थाण्डिल, अहीन, सथिक, सचाय्य आदि का उल्लेख किया जा सकता है। एक अन्य उदाहरण से बात स्पष्ट करे।

आज यहाँ खेती हल-बैल से हो रही है तो हल के साथ 'कानी', 'जुवाठ', 'नाधा', 'पैना' आदि बहुत-से शब्द प्रचलित है। यदि थोडे दिन मे ऐसा युग आये कि खेती पूर्णतः ट्रैक्टर आदि से होने लगे जैसा कि रूस, अमरीका आदि मे होता है तो उपर्युक्त शब्द अप्रयुक्त होने के कारण स्वभावतः धीरे-धीरे लुप्त हो जायेंगे और उनके स्थान पर ट्रैक्टर आदि

से सम्बन्धित अन्य शब्द प्रचलित हो जायेगे।

ख रहन-सहन मे परिवर्तन

रहन-सहन मे परिवर्तन के कारण भी शब्दो को मरना पडता है, क्योकि इस परिवर्तन के कारण बहुत-सी पुरानी वस्तुओ (कपडो, आभूषणो तथा अन्य रहन-सहन की चीजो) से हमारा सम्पर्क छूट जाता है, अत उनके नाम या उनसे सम्बद्ध शब्द भाषा से निकल जाते है, लुप्त हो जाते है। पुराने खाद्य पदार्थो मे 'मन्थ' (चावल को मथकर बनाया गया सत्तू), 'यावक' (जौ से बना एक खाद्य पदार्थ) तथा 'सयाव' (विशेष प्रकार का हलवा) की यही गति हुई है। जायसी के 'पदमावत' मे ऐसे बहुत-से जेवरो के नाम है जो आज मृत हो चुके है।

ग अश्लीलता

गुप्तागो के नाम तथा उनसे सम्बन्धित विसर्जन या मैथुन के शब्द भी सर्वसाधारण मे प्रचलित होने पर सभ्य-समाज से बहिष्कृत हो जाते है। आज सभ्य-समाज मे लिग, भग, गुदा, सम्भोग, पेशाब करना, पाखाना होना, आबदस्त लेना, स्तन तथा अण्डकोष आदि शब्द तो चलते है किन्तु इनके ही अन्य बहुत-से पर्याय ऐसे है जिनको केवल निम्न स्तर के अशिक्षित लोग ही प्रयुक्त करते है। पढे-लिखे या उच्चस्तर के लोग तो उनका नाम अकेले मे भी नही ले सकते। इस प्रकार शिक्षित समाज के लोगो मे इन शब्दो की मृत्यु हो गयी है। ५० वर्ष मे यदि यहाँ की शत-प्रतिशत जनता शिक्षित हो जाय तो ये शब्द भाषा से पूर्णत निकाल बाहर कर दिये जायेगे और उस दशा मे इनकी पूरी मृत्यु हो जायेगी।

च पर्याय

कभी-कभी यह देखा जाता है कि जन-मस्तिष्क व्यर्थ मे एक भावना के लिए कई शब्दो को अपने मस्तिष्क पर लादना नही पसन्द करता, अत कुछ शब्दो का लोप हो जाता है।

पर्याय मे एक या कई शब्दो के लोप मे तो मनुष्यो की भाँति लडाई

भी होती है। दो शब्द जब प्रचलन मे आते है और किसी प्रकार ऐसी दशा आ जाती है कि एक ही प्रचलित रहेगा तो शब्द अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए आपस मे युद्ध करते है। अन्त मे एक हारकर मैदान छोड देता है और जो विजयी होता है प्रचलन मे रहता है।

मुसलमान जब भारत मे आये तो उनके साथ अरबी-फारसी तथा तुर्की के शब्द थे। यहाँ प्रचलित उनके पर्यायो से उनका युद्ध हुआ और कभी एक पक्ष की हार हुई तो कभी दूसरे की। इस सम्बन्ध मे कुछ मनोरंजक उदाहरण लिये जा सकते है।

मुसलमान जब यहाँ आये तो १००० की सख्या के लिए **सहस्र** (या **सहस**) शब्द यहाँ था। उनके साथ फारसी का **हज़ार** शब्द आया था। स्वभावतः दोनो शब्दो मे अपने अस्तित्व के लिए युद्ध आरम्भ हुआ। युद्ध काफी दिनो तक चलता रहा, किन्तु अन्त मे **हज़ार** शब्द की विजय हुई, और **सहस्र** को मरना पडा। प्रचलित भाषा मे **हज़ार** का ही आज एकछत्र राज्य है। **सहस** या **सहस्र** को कोई पूछनेवाला नही है। हाँ, इस युद्ध मे एक बात और हुई है। लडाई मे **हज़ार** बेचारे की एक अगुली टूट गयी है। जन-भाषा मे उसे अपना बिन्दु खोकर **हजार** बनना पडा है। खैर, मरने से तो अपनी अगुली गँवाकर जीते रहना अच्छा ही है।

इसी प्रकार एक विजयी शब्द **कफन** है। यह शब्द अरबी का है। सस्कृत मे कफन के लिए **शवाच्छादन** शब्द आता है। निश्चित है कि आज **शवाच्छादन** को न तो बोल-चाल मे हम प्रयुक्त करते है और न साहित्य मे। इसका आशय यह है कि इन दोनो शब्दो मे युद्ध हुआ तो **शवाच्छादन** को करारी हार ही नही खानी पडी अपितु मर भी जाना पडा। इसी कारण आज **कफ़न** सम्राट बना बैठा है।

तुर्की शब्द **कैंची** और सस्कृत **कर्तरी** या प्राकृत **कत्तरी** मे भी इसी प्रकार युद्ध हुआ और **कर्तरी या कत्तरी** को जान से हाथ धोना पडा। आज **कैंची** के आगे कोई उसकी सुधि भी नही लेता, प्रयोग करना तो दूर है।

ये बातें तो कुछ पुरानी है। इधर हाल मे भी हमारे कुछ शब्दो की

हत्या हुई है, जिसका अपराध यूरोप से आनेवाले शब्दो के सर है। **गवाक्ष** का खून पुर्तगाली शब्द **जँगला** तथा देशज शब्द 'खिडकी' ने कर डाला है। इस प्रकार सभी भाषाओ मे एक पर्याय दूसरे का गला घोटता दिखायी पडता है।

कबीर, जायसी, सूर तथा तुलसी की भाषा को आज यदि खँगाला जाय तो बहुत-से ऐसे शब्द प्रकाश मे आ सकते है, जो उस समय साहित्य मे प्रचलित थे, पर हम आज जिन्हे बिल्कुल भूल गये है। इनमे से बहुत तो ऐसे भी मिल सकते है जिन्हे प्रयोग द्वारा पुनर्जीवन प्रदान किया जाय तो हमारी भाषा की अभिव्यंजना बढ सकती है।

जायसी मे एक ऐसा ही शब्द **परबिला** है। **परबिला** का अर्थ 'पहले जन्म का' होता है—

जस ऊखा कहँ अनिरुध मिला।
मेटि न जाइ लिखा **परबिला**।

आज यह शब्द भी मर गया है।

तुलसी मे एक शब्द **गुदारा** भी इसी प्रकार का है—

भा भिनुसार **गुदारा** लागा

गुदारा का अर्थ नाव पर नदी पार करने की क्रिया होता है। यह शब्द भी अब जीवित नही है।

डॉ० अमरनाथ झा ने 'हिन्दुस्तानी' मे 'हिन्दी के कुछ भूले हुए शब्द' शीर्षक एक लेख लिखा था। यह लेख उनके निबन्ध-सग्रह 'विचार-धारा' मे भी है। इस लेख मे उन्होने डेढ सौ से ऊपर शब्दो की एक सूची दी है, जिनकी मृत्यु इधर दो सौ वर्षो के भीतर हुई है। यह सूची उन्होने जॉन शेक्सपीयर की 'हिन्दुस्तानी इगलिश डिक्शनरी' के आधार पर तैयार की है। अग्रेजो द्वारा सम्पादित हिन्दी या हिन्दुस्तानी डिक्शनरियो मे प्राय उस काल के प्रचलित शब्दो को ही विशेष स्थान दिया जाता था, क्योकि वे मिशनरी तथा अफसर लोगो को हिन्दुस्तानी बोलने और हिन्दुस्तानी लोगो की बात समझने की योग्यता प्रदान करने के लिए बनायी जाती थी। शेक्सपीयर, फैलन, हैरिस तथा टेलर आदि के प्रसिद्ध कोषो के आधार पर इस प्रकार हाल मे लुप्त हुए या मरे शब्दो

की कई हज़ार की सूची बनायी जा सकती है। डॉ० झा की सूची मे दिये गये कुछ हाल के मरे शब्दो के शव यहाँ देखे जा सकते है—

शब्द	अर्थ
१. उभराना	बरतन को ऊपर तक भर देना।
२ अपटक	जो हाथ-पैर चलाने मे असमर्थ हो।
३. उजान	नदी के प्रवाह के विरुद्ध।
४. अर्गनी[1]	कपडा सुखाने की रस्सी।
५. असौं[2]	इस वर्ष।
६. इडुआ	कपडे का टुकडा, जिस पर गट्ठर रखा जाय।
७ भँभूआ	वह फकीर, जो चोरी करने को बाध्य होता है।
८. पसर	मवेशी को रात को चराना।
९. पोआना	धूप मे सुखाना।
१०. फसकड	ज़मीन पर पाँव फैलाकर बैठना।
११. ततरी	चपला कुमारी।
१२. थॉग	चोरो का अड्डा।
१३. त्योधा	जिसे कुछ कम दिखायी दे।
१४. चफाल	ऐसा स्थान जिमके चारो ओर दलदल हो।
१५. दसौंधी	प्रशसात्मक कविता लिखने वाला।
१६. डाबक	कुएँ का ताज़ा पानी।

ये सब अभी हाल मे मरे है। यदि ध्यान दे तो स्पष्ट हुए बिना न रहेगा कि उपर्युक्त शब्दो मे अधिकाश के लिए हमारी हिन्दी मे कोई एक

---

१. २. ये शब्द भोजपुरी मे अब भी प्रयुक्त होते हैं।

शब्द नही है।

इनकी मृत्यु के सम्बन्ध मे ऊपर के किसी भी कारण ने काम नही किया है। साहित्य मे इनकी अनुपस्थिति का शायद प्रधान कारण यह है कि इधर नवीन जागरण के बाद हमने जब अपने साहित्य का निर्माण प्रारम्भ किया तो ग्रामीण शब्दो को पूर्णत छोड ही दिया। ऐसी दशा मे हमारे लिए दो ही स्रोत थे। एक तो हमने सभ्य लोगो मे प्रचलित खड़ी बोली की शब्दावली ग्रहण की और उससे भी जहाँ काम नही चला वहाँ सस्कृत, अरबी-फारसी तथा अग्रेजी आदि के शब्द ग्रहण किये। प्राचीन हिन्दी-कवियो के शब्दो का कोई सग्रह हमारे समक्ष न था, अत उसका सहारा न ले सके। आज हमारी शब्दो की समस्या काफी सुलभ जाय यदि भक्तिकालीन हिन्दी-साहित्य तथा ग्रामीण बोलियो के समर्थ शब्दो को संगृहीत करके हम प्रयोग करने लगे। अस्तु।

इस प्रकार हम देखते है कि शब्द मरते है। कुछ शब्द जिनकी हमे आवश्यकता नही है, उनका मरना तो ठीक ही है, किन्तु कभी-कभी ऐसे शब्द भी मर जाते है जिनकी हमे अत्यन्त आवश्यकता है और जिनके न होने के कारण हम अपनी बातो को घुमा-फिराकर कहते है या एक शब्द के स्थान पर एक या दो पक्ति मे भाव व्यक्त करना पड़ता है। ऐसे मरे शब्दो को हमे पुन ले लेना चाहिए। कहना अनुचित न होगा कि मरे शब्दो का अध्ययन मनोरंजक तथा ज्ञानवर्धक एवं समाज की विभिन्न बातो का प्रकाशक होने के साथ-साथ भाषा को समृद्ध करने की दृष्टि से भी आवश्यक है।

१४ : : हमारे पारिवारिक शब्द

'परिवार' मानव-समाज की सबसे महत्त्वपूर्ण संस्था है। उसे समाज का आधार भी कहे तो अत्युक्ति न होगी। वही सर्वप्रथम मनुष्य या व्यक्ति ने अपने-आपको बाँधना सीखा और बाँधना सीखकर ही, अपने को बाँधकर वह समाज बना सका। 'परिवार' या 'समाज' अनेक व्यक्तियो का बँधा या सुश्रृंखलित रूप ही तो है। इसी कारण सस्कृत मे परिवार की व्युत्पत्ति की गयी है 'परिव्रियते अनेन' (शब्द-कल्पद्रुम), अर्थात् 'जिसमे व्यक्ति घेरा जाय वह परिवार है।' किन्तु यह बात आश्चर्यजनक है कि परिवार बाह्यतः व्यक्ति को बाँधकर या घेरकर भी भीतर से उसे मुक्त कर देता है। वही उसे 'स्व' का बन्धन तोडकर दूसरे के सुख-दुख को अपना मानने की पहली ट्रेनिंग मिलती है।

'परिवार' के मूल स्त्री-पुरुष है। सभी नातो-रिश्तो का आधार यही है। दूसरे शब्दो मे सभी सम्बन्ध इन्ही के सम्बन्धो पर आधारित है। विभिन्न सम्बन्धों के सूचक पारिवारिक शब्द सास्कृतिक दृष्टि से बडे ही महत्त्वपूर्ण है। यदि ध्यान दिया जाय तो यह स्पष्ट होते देर नही लगेगी कि सभी संस्कृतियों या भाषाओ मे इन शब्दो का भण्डार एक-सा नही होता। उदाहरण के लिए, हिन्दी और अग्रेजी के ही पारिवारिक सम्बन्ध-सूचक शब्दो को लें, हम देखेंगे कि दोनो मे पूर्ण समानता नही है। माता-पिता, भाई, बहिन, चाचा, चाची, भतीजा, भतीजी आदि कुछ सम्बन्ध-

सूचक शब्द तो ऐसे है, जो दोनो मे ही हैं, किन्तु दामाद, ससुर, सास, साला, बहनोई, मौसी, मामा, मामी, बहू, नाती, पोता आदि ऐसे अनेक शब्द है, जिनके लिए हमारे यहाँ तो स्वतन्त्र शब्द हैं, किन्तु अग्रेज़ी मे स्वतन्त्र शब्द नही है। वहाँ इन-ला (in-law) आदि जोडकर इनके लिए आवश्यकतानुकूल शब्द बना लिए जाते है, जैसे 'फादर-इन-ला' ससुर के लिए, या मामा के लिए 'मैटरनल अकल' आदि। इसका आशय यह है कि इन रिश्तेदारो का भारतीय परिवार मे प्राचीन काल से स्थान था, इसीलिए उनके स्वतन्त्र नामकरण की आवश्यकता पडी, किन्तु अग्रेज परिवार मे इनका स्थान नही था, इसलिए इनके लिए स्वतन्त्र शब्दो की आवश्यकता का अनुभव नही हुआ। इस प्रकार भारत का पारिवारिक क्षेत्र अपेक्षाकृत बडा रहा है। यो इस दृष्टि से भारत मे सर्वदा एकरूपता नही रही है। उदाहरणार्थ 'मौसी' और 'फूफी' का तो परिवार मे प्राचीन काल मे अपने यहाँ स्थान था, इसलिए इनके लिए क्रम से 'मातृष्वसा' और 'पितृष्वसा' शब्द थे, किन्तु 'मौसा' और 'फूफा' के लिए परिवार मे कदाचिद् कोई विशेष स्थान नही था; इसलिए उनके लिए स्वतन्त्र शब्द की आवश्यकता नही थी। हिन्दी के ये शब्द आधुनिक काल मे 'मौसी' और 'फूफी' के आधार पर बनाये गये हैं। इस दृष्टि से हमारा पारिवारिक क्षेत्र आधुनिक काल मे कुछ विस्तृत हो गया है।

यहाँ कुछ अत्यन्त प्रमुख पारिवारिक सम्बन्धसूचक शब्दो पर सक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है।

माता—'माता' शब्द भारोपीय परिवार के प्राचीनतम शब्दो मे से है। आर्य, इसका प्रयोग भारत मे आने के पूर्व से कर रहे हैं। इसी कारण ग्रीक meter, लैटिन mater, लिथुवानियन mote, स्लाव mati, जर्मन muotar, mutter, आइसलैंडिक modir, डच moeder, सस्कृत मातृ, तथा अग्रेज़ी mother आदि रूपो मे यह अनेक भाषाओ मे विभिन्न रूपो मे मिलता है। सस्कृत के पण्डितों ने इसकी व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से दी है। वाचस्पत्य, शब्द-कल्पद्रुम आदि कोशों मे इसका सम्बन्ध निर्माण-वाची 'मा' धातु से माना गया है; अर्थात् जो निर्माण करे वह 'माता' है। 'पूजा करना' या 'आदर करना' अर्थ की धातु 'मान्' से भी कुछ लोग

'माता' का सम्बन्ध मानते है, अर्थात् जिसकी पूजा हो या जिसका आदर किया जाय वह माता है। मापने के अर्थ मे भी सस्कृत की एक धातु 'मा' है। एक तीसरे मतानुसार माता का सम्बन्ध इसी धातु से है। लैटिन या अग्रेजी matrix (साँचा) का सम्बन्ध भी इसी से है, अर्थात् माता वह साँचा है जो पुत्र को अपने मे ढालती है। अग्रेजी मैट्रिक और मैट्रिकुलेट भी मूलत इसी से सम्बद्ध है। वहाँ भी लडके प्रवेश पाकर ढलते है। वैज्ञानिक दृष्टि से उपर्युक्त सभी व्युत्पत्तियाँ कपोलकल्पना है। वस्तुत, माता शब्द पुराना है, जैसा कि ऊपर के उदाहरणो से स्पष्ट है। उस समय किसी शब्द के धातु के आधार पर निर्माण की सम्भावना नही थी। कदाचित् यह नर्सरी शब्द है और इसका आधार अनुकरणात्मक शब्द 'मा' है।

पिता—'माता' की भाँति 'पिता' भी हमारे भाषा-परिवार का अत्यन्त पुराना शब्द है। अवेस्ता पिता, ग्रीक pater, लैटिन pater, जमन vater, गौथिक fadar, अग्रेजी father, सस्कृत पितृ आदि रूपो मे यह अनेक प्राचीन और आधुनिक भाषाओ मे पाया जाता है। इसका सम्बन्ध प्राय· 'पा' (पालना) धातु से माना जाता है, अर्थात् जो सन्तान का पालन करे वह पिता है। माता की भाँति ही इसकी व्युत्पत्ति भी मात्र कल्पना है। यह भी नर्सरी शब्द है और इसका आधार अनुकरणमूलक शब्द 'पा' से है। वस्तुत छोटे बच्चे यो ही 'पा', 'मा' जैसे ओष्ठ्य ध्वनि-युक्त शब्दो का उच्चारण, बोलने के प्रारम्भिक दिनो मे, करते है और सयोगवश लोगो ने उन्हे पिता-माता के लिए प्रयुक्त शब्द मान लिये है। इस श्रेणी के अनेक शब्दो का विकास इसी प्रकार (पा, मा, ता, दा) आदि अनुकार शब्दो से हुआ ज्ञात होता है।

पत्नी, भार्या—'पत्नी' शब्द भारतीय परिवार का बहुत पुराना शब्द नही है। इसीलिए इससे मिलते-जुलते शब्द सस्कृत से सम्बद्ध अन्य भाषाओ मे नही है। व्याकरण की दृष्टि से इसका सम्बन्ध 'पति' शब्द से है। जिसका 'पति' से सम्बन्ध हो वह पत्नी (पति-डीम् नुक्) है। पत्नी के लिए एक शब्द भार्या भी है। भार्या का अर्थ है 'भरण की जाने योग्य'। अर्थात् पति, पत्नी का भरणपोषण करता है, इसीलिए उसका नाम भार्या

है। यह बात दूसरी है कि आजकल अनेक भार्याएँ अपने पति का ही भरण-पोषण करती है, ऐसी स्थिति मे वस्तुत. ऐसे ही पति भार्या सज्ञा के अधिकारी है।

पति, भर्ता—'पत्नी' की भाँति ही 'पति' भी बहुत पुराना शब्द नही है। यह शब्द 'पा' (रक्षा करना) धातु से है और इसका अर्थ है (पत्नी का) रक्षक। दुर्भाग्य है कि इस युग मे बहुत-से लोग पति सज्ञा के अधिकारी होकर भी 'पत्नी' की रक्षा मे अपने को असमर्थ पा रहे है। यो अधिकाश स्त्रियाँ भी अब अपनी रक्षा की अपेक्षा नही रखती और वे स्वय पति की रक्षिका-जैसी है। इस रूप मे यथार्थ पति वे ही है।

जिस प्रकार पति-पत्नी सम्बद्ध शब्द है, उसी प्रकार भार्या-भर्ता भी है। 'भार्या' 'भरण करने योग्य' है तो 'भर्ता' 'भरण करनेवाला' है।

पुत्र—आजकल पुत्र पिता के लिए एक समस्या है—हर दृष्टि से। ठीक उसी प्रकार 'पुत्र' शब्द भाषाविज्ञानवेत्ताओ के लिए भी एक समस्या है—व्युत्पत्ति की दृष्टि से। उसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे भारत मे प्रचलित पुराना मत बहुत विचित्र है। लोगो का यह विश्वास रहा है कि मनुष्य पैदा होते ही तीन या चार ऋणो मे दब जाता है। इनमे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ऋण 'पितृऋण' है। पितृऋण से मुक्ति पाने के लिए पुत्र उत्पन्न करना आवश्यक है। इस प्रकार जिसे पुत्र पैदा नही होता वह पितृऋण का ऋणी रहता है और मरने पर उसे इस अपराध के लिए 'पुत्' नाम के नरक मे जाना पडता है। अर्थात् यदि पुत्र पैदा हो जाय तो 'पुत्' नरक मे नही जाना पडता। इसी विश्वास के आधार पर पुत्र को 'पुत्' नरक से त्राण देनेवाला अर्थात् 'पुत्+त्र' कहा गया। इसीलिए पण्डितो के अनुसार पुत्र लिखना अशुद्ध है, इसे पुत्त्र (पुत् नरक से तारने वाला) लिखना चाहिए। पुत्र की यह व्युत्पत्ति गोपथ ब्राह्मण, निरुक्त, रामायण, महाभारत तथा मनुस्मृति आदि अनेक प्राचीन ग्रन्थो मे मिलती है।

निरुक्तकार कहता है—पुत्र. पुरु त्रायते निपरणाद्वा पुन्नरक ततस्त्रायते इति वा। मनु कहते है—

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् त्रायते पितरं सुत· ।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्त· स्वयमेव स्वयम्भुव ।

किन्तु कहना न होगा कि यह व्युत्पत्ति एक सुन्दर कल्पना मात्र है। इसकी दूसरी व्युत्पत्ति 'पुष्' (पोषण करना) धातु से मानी जाती है। एक तीसरी व्युत्पत्ति 'पू' (पवित्र करना) से भी है। यह पिता को पवित्र करता है। वस्तुतः जैसा कि मोनियर विलियम्ज आदि ने सकेत किया है, इसकी व्युत्पत्ति सन्दिग्ध है।

पुत्रार्थी सस्कृत शब्द 'सूनु' अपेक्षाकृत पर्याप्त प्राचीन है। इसका सम्बन्ध 'सू' (पैदा होना) धातु से माना जाता है। अर्थात् 'सूनु' वह जो पैदा हो। अग्रेज़ी son, अवेस्ता hunu, लिथुवानियन sunus, स्लाव synu, गोथिक sunus, ऐंग्लो-सैक्सन sunu, जर्मन sohn, डच zoon तथा प्राचीन नार्स sunu आदि यही हैं। वैदिक साहित्य मे पाया जाने वाला पतोहू का वाचक 'स्नुषा' का सम्बन्ध भी कुछ लोगो के अनुसार 'सूनु' से ही है। कुछ लोग इसका सम्बन्ध 'स्नु' (टपकना) धातु से भी मानते हैं, अर्थात् पतोहू या स्नुषा वह है जो अचानक परिवार मे आ टपके। बात भी सही है। यो आश्चर्य है कि अचानक टपककर भी पतोहू शीघ्र ही परिवार का अन्तरंग बन जाती है। यही स्नुषा शब्द वर्तमान पजाबी मे 'नू' रूप में मिलता है। 'स्नुषा' शब्द 'सूनु' की भाँति पर्याप्त पुराना है। लैटिन snurus, स्लाव snucha, ऐंग्लो-सैक्सन snoru, जर्मन snura, schnur, ग्रीक nuos आदि इसी से सम्बद्ध है। हिन्दी 'पतोहू' शब्द संस्कृत 'पुत्रवधू' का विकसित रूप है।

दुहिता—माता और पिता की भाँति ही 'दुहिता' शब्द भी बहुत पुराना है। अवेस्ता दुग्दर, फारसी दुख़्तर, ग्रीक thygater, जर्मन tochter, अंग्रेज़ी daughter, गोथिक dauchter, लिथुवानियन dukter तथा स्लाव dushti आदि इसी से सम्बद्ध है। भारतीय पण्डितो ने इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे तरह-तरह के अनुमान लगाये हैं। यास्क अपने निरुक्त मे 'दूरे हिता भवति' कहकर यह कहना चाहते है कि 'दुहिता' वह है जिसके अधिक-से-अधिक दूर जाने मे हित हो। अर्थात् यदि लड़की का विवाह समीप होगा तो हर समय उसे कुछ-न-कुछ देना पडेगा, अतः उसे दूर-से-

दूर विवाहित करने मे ही अपना हित है। हिन्दू घर मे अत्यन्त प्राचीन काल से लडके का जन्म शुभ तथा लडकी का जन्म अशुभ-जैसा माना जाता रहा है। इसीलिए कुछ लोग 'दुहिता' का सम्बन्ध दह् (जलाना) से मानते है। अर्थात् लडकी परिवार या माता-पिता को जलानेवाली होती है। कुछ लोग 'दू' (दुखी करना) से इसका सम्बन्ध मानकर इसे 'दुःख देनेवाली' भी कहते है, या 'दुर्+हिता' अर्थात् 'अहित करने वाली' मानते है। किन्तु इसकी अधिक वैज्ञानिक व्युत्पत्ति कदाचित् दुह् (दूहना) से है। प्राचीन भारोपीय परिवार मे पुत्री का प्रमुख कार्य घर की गाये दुहना था, इसीलिए उसे दुहिता कहा गया। इस प्रकार दुहिता का मूलार्थ 'दूध दूहनेवाली' है।

भाई—'भाई' का सम्बन्ध सस्कृत भ्रातृ से है। यह अग्रे जी Brother, अवेस्ता Bratar, जर्मन Bruder, फ्रेंच freve, लैटिन frater, लिथुवा-नियन Broterelis, स्लाव Bratru, गोथिक Brothar, ग्रीक phrater आदि से सम्बन्धित है। एक मत से इसका सम्बन्ध भ्राज् (चमकना) से है, अर्थात् भ्रातृ वह है जो चमके (भ्राज्+इष्णुच्)। इसकी दूसरी व्युत्पत्ति भृ (अधिकार करना, सहारा देना) से मानी जाती है। भाई या तो धन-सम्पत्ति बँटवा लेते हैं या सहारा देते है। इस व्युत्पत्ति मे इन्ही की ओर संकेत है। भतीजा (भ्रातृज), भतीजी (भ्रातृजा) और भावज या भौजाई (भ्रातृ-जाया) भी इसी से सम्बद्ध है।

बहिन—यह संस्कृत शब्द 'भगिनी' का विकास है। भगिनी की व्युत्पत्ति कुछ लोग 'भग' (ऐश्वर्य, सौभाग्य) से मानते हैं। भाई ही बहिन के लिए ऐश्वर्य है। इस प्रकार 'भगिनी' का अर्थ 'ऐश्वर्यवाली' या 'सौभाग्य-शालिनी' है। एक अन्य मत है—भग यत्न: पित्रादितो द्रव्यादाने विद्यते-ऽस्या: अर्थात् जो पिता आदि की सम्पत्ति की अधिकारिणी नही है। इसका आशय यह है कि अब, जब पिता की सम्पत्ति मे पुत्री का भी अधिकार हो गया, वह इस नाम की अधिकारिणी नही है और उसे अभगिनी कहना चाहिए। बहनोई (भगिनीपति), भानजा (भागिनेय), भानजी (भागि-नेयी) आदि का सम्बन्ध भी इसी से है। सस्कृत मे भगिनी के लिए और पुराना शब्द 'स्वसा' है। स० स्वसृ से ही जर्मन schwester, गोथिक

swister, लिथुवानियन sesu, लैटिन soror, डच zuster, अंग्रेजी sister, ग्रीक sor, आइसलैंडिक systir आदि सम्बद्ध है। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत पण्डितो द्वारा सु+अस्+ऋन् से मानी गयी है, किन्तु वस्तुत यह शब्द इस दृष्टि से सन्दिग्ध है। कुछ लोग इसे सृ (सरकना) से भी मानते है।

ननद—ननद और भावज का कलह प्रसिद्ध है। भारतीय लोक-गीतो मे इसके चित्र भरे पडे है। ननद शब्द की व्युत्पत्ति इसी आधार पर पण्डितो द्वारा दी गयी है। वाचस्पत्य कोश आदि मे कहा गया है 'न नन्दति कृतायामपि सेवाया न तुष्यति'। अन्यत्र भी 'न नन्दति सेवयापि न तुष्यति'। अर्थात् ननद वह है जो (भावज द्वारा) सेवा की जाने पर भी 'नन्द' या प्रसन्न न हो। असम्भव नही है कि सामान्यत, ननदो की इस प्रवृत्ति के ही कारण यह कुनाम पड गया हो। क्या महिला समाज के इस जागरण-युग मे ननदे इस नाम का विरोध न करेगी और अपने लिए कोई सुन्दर-सा नाम प्रस्तावित करेगी ? 'सुनद' नाम सम्भवत. अच्छा रहेगा।

देवर—'देवर' शब्द भी कम मनोरजक नही है। महाभारत मे पति के न रहने पर देवर से विवाह करने का आदेश दिया गया है—नारी तु पत्यभावे वै देवरं कुरते पतिम्। नारद, गौतम तथा मनु आदि के धर्मशास्त्रो मे सन्तानार्थ 'देवर' से ही नियोग की आज्ञा है। इसी परम्परा मे यास्क के अनुसार 'द्वितीयो वरो भवति' उद्धरणीय है, अर्थात् (भाभी का) दूसरा वर होने के कारण 'देवर' कहलाता है। अन्य भाषाओ की तुलना मे भी यह बात ठीक ज्ञात होती है। लैटिन मे यह 'देवर' शब्द levir रूप मे मिलता है और वहाँ भी इसका अर्थ 'पति का भाई' ही है। इसी levir से अंग्रेजी मे levirate शब्द बना है, जिसका अर्थ है 'पुत्रहीन विधवा भाभी से देवर का ब्याह' या 'देवर-भाभी का ब्याह'। इस प्रकार देवर शब्द इस बात का साक्षी है कि प्राचीन काल मे पति के मरने के बाद प्राय देवर से विवाह कर दिया जाता था। आधुनिक काल मे देवर-भाभी के मजाक भी सम्भवत. उसी परम्परा की कडी है। रूसी मे देवर को 'देवार' कहते है।

ससुर—इसका सम्बन्ध संस्कृत शब्द श्वसुर से है। ग्रीक ekuros, लैटिन socer, लिथुवानियन Szeszuras, स्लाव svekru, गोथिक swaihra, जर्मन sweher, ऐंग्लो-सैक्सन sweor भी इसी से सम्बद्ध है। इसका आशय यह है कि यह शब्द पर्याप्त पुराना है और आर्य भारत मे आने के पूर्व से इसका प्रयोग करते रहे है। इसका सम्बन्ध 'अश्' (फैलना) से माना जाता है। अर्थात् ससुर वह है जो अपने पुत्र और उसकी सन्तान तथा अपनी पुत्री और उसकी सन्तान रूप मे संसार मे फैले।

सास—इसका सम्बन्ध सस्कृत श्वश्रू से है। इसका शाब्दिक अर्थ है 'श्वसुर का'। लैटिन socrus, स्लाव svekry, ऐंग्लो-सैक्सन swegen, जर्मन swiger आदि का सम्बन्ध इसी से है।

जामाता—हिन्दी 'जमाई' जामातृ से सम्बद्ध है। निरुक्तकार यास्क के अनुसार 'जाया माति मिनोति मिमीते बा' अर्थात् दामाद वह है जो स्त्री से सन्तान पैदा करे। ऋग्वेद मे तथा अन्यत्र भी इस शब्द का प्रयोग बहनोई या पति के अर्थ मे हुआ है। ये भी सन्तान पैदा करते है, अत इनके लिए भी यह शब्द उपयुक्त ही है। बाद मे इस शब्द का प्रयोग 'दामाद' के लिए ही सीमित हो गया, क्योकि कन्या सन्तानार्थ दामाद को ही दी जाती है।

तात—सम्बन्धबोधक शब्दो मे 'तात' शब्द सबसे अधिक उर्वर है। मूलत. इसका अर्थ 'पिता' था। पण्डितो के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति है—तनोति विस्तारयति गोत्रादिकम् (तन्+क्त) अर्थात् 'जो गोत्र या कुल का विस्तार करे।' मेरा अनुमान है कि यह व्युत्पत्ति कल्पना है, और यह शब्द बच्चो द्वारा अनायास उच्चरित ध्वनि 'ता-ता' से सम्बद्ध है तथा नर्सरी शब्द है। 'पिता' के प्रति आदर का भाव था ही, अत आगे चलकर पितातुल्य और आदरणीय अन्य लोगो के लिए भी 'तात' शब्द का प्रयोग होने लगा। ताऊ (स० तातगु=चाचा) इसी 'तात' से है, जिसे आकारान्त पुल्लिग बनाकर 'ताया' भी कहते है। 'ताई' इसका स्त्रीलिंग है। 'त' ध्वनि कभी-कभी 'च' हो जाती है। इसी कारण 'तात' चाचा या चचा हो गया, जिसका स्त्रीलिंग चाची है। 'त' का द (घोषीकरण) भी हो जाता है। इसी तरह 'तात' का 'दादा', फिर स्त्रीलिंग 'दादी' हो

गया है। दादा का प्रयोग 'आजा', 'पिता', 'ताया', 'बडा भाई' आदि के लिए होता है। 'दादी' का प्रयोग 'आजी' के लिए होता है। बडे भाई के अर्थ मे 'दादा' का स्त्रीलिग 'दीदी' है जिसका अर्थ 'बडी बहिन' है। 'द' का 'ज' होने से यही 'दीदी' शब्द 'जीजी' बन गया है। 'जीजा' (बहनोई) शब्द इस जीजी का पुल्लिग बनाया गया है। अग्रेजी डैड, डा, डैडी, केल्टिक टाड, ब्रिटन टाड, टाट, ग्रीक ताता आदि भी इसी से सम्बद्ध है। 'तात' का प्रयोग सस्कृत मे बडो और छोटो दोनो के लिए सम्बोधन के शब्द के रूप मे भी होता रहा है। अग्रेज़ी मे 'अलविदा' के अर्थ मे प्रयुक्त शब्द 'टाटा' भी उससे भिन्न नही है। यह पुराना सम्बोधन है जो अब 'अलविदा' हो गया है।

१५ :: सप्ताह के दिनों के नाम

समय का 'साल' के रूप मे विभाजन काफी पुराना है। सस्कृत में 'साल' के लिए 'वर्ष', 'शरद्' आदि शब्दो का प्रयोग इस बात का सकेत करता है। एक वर्षा ऋतु के बाद दूसरी वर्षा ऋतु आने पर या एक शरद ऋतु के बाद दूसरी शरद ऋतु आने पर लोगो को एक साल बीत जाने का पता चलता था, इसीलिए साल के लिए 'वर्ष' या 'शरद्' जैसे शब्दो का प्रयोग चला। अग्रेजी का ईयर (year) शब्द भी मूलत· ऋतु का ही पर्याय है। यह पुरानी अग्रेज़ी मे gear, जर्मन मे jahr तथा मूलत ग्रीक मे hora था, जिसका अर्थ ऋतु था। उल्लेख्य है कि यही सस्कृत मे होडा या हिन्दी मे होडा या होडाचक्र है। अग्रेजी का ऑवर (hour) भी इसी से सम्बद्ध है।

वर्ष मूलतः पृथ्वी के सूर्य के चारो ओर घूमने पर आधारित है, अत यह प्राकृतिक है, इसी कारण अनेक सस्कृतियो मे यह प्राचीन काल से ही मिलता है। इसी प्रकार महीना चन्द्रमा के, पृथ्वी के चारो ओर घूमने पर आधारित है, अत यह भी प्राकृतिक है, और इसी कारण अनेक सस्कृतियो मे अत्यन्त प्राचीन काल से इसकी भी सकल्पना मिलती है। किन्तु इन दोनो के विपरीत सप्ताह का विभाजन कृत्रिम है, इसी कारण इस दृष्टि से विश्व मे प्राचीन काल मे एकरूपता नहीं मिलती। प्राचीन यूनान मे महीना दस-दस दिनो के तीन भागो मे बँटा था। रोम मे भारत

के कुछ क्षेत्रो की भाँति आठ-आठ दिन का अठवारा होता था। चीन मे दस-दस, बारह-बारह दिनो के विभाजन थे। यही नही, बोगोटा मे ३-३, पश्चिमी अफ्रीका मे ४-४, मध्य अमरीका तथा असीरिया मे ५-५, तथा टोगो की एक जाति मे ६-६ दिन के सप्ताह का भी पता चलता है। किन्तु आज पूरे विश्व मे सात दिनो का सप्ताह होता है। आखिर यह एकरूपता कहाँ से आयी ? यही नही, सात दिनो की गणना एव उनके नामो मे भी काफी एकरूपता है। ऐसी स्थिति मे यह अनुमान लगाना बहुत गलत न होगा कि मूलत किसी एक देश मे यह विचार उगा और वही से चारो ओर फैला। मेरे विचार मे वह देश भारत था। यद्यपि भारत मे प्राप्त साहित्य मे दिनो का प्रयोग बाद में मिलना शुरू होता है, किन्तु मुझे लगता है कि यह सयोग की बात है। मूलतः सात दिनो की सकल्पना हमारी ही है।

प्राचीन काल मे ग्रह सात माने जाते थे। बाराहमिहिर मे सात ही ग्रह है। इन्ही सात ग्रहो के आधार पर सात दिन का सप्ताह बना और इनके नाम भी इन ग्रहो के आधार पर ही रखे गये : रविवार, सोमवार, मगलवार, बुधवार, वृहस्पतिवार, शुक्रवार और शनिवार। यूरोप मे ऐंग्लो-सैक्सन लोगो ने ५-६ वी सदी के लगभग भारत से यह परम्परा ली और भारतीय नामो का अनुवाद करके अपने दिनो को क्रमश sunnandoeg, monaandoeg, tiwesdoeg, wednesdoeg, thunresdoeg, frigedoeg और saterdoeg कहा। अग्रेजी के सडे, मडे, ट्यूजडे, वेन्स्डे, थर्सडे, फ्राइडे तथा सैटर्डे इन्ही के विकास है। सडे का 'सन' सूर्य है तो मडे का 'मन' मून अथवा चन्द्रमा। अन्य भी इसी प्रकार हैं। लैटिन भाषा मे प्राप्त नाम भी हमारे अनुवाद ही है।

ईरान और अरब मे भी कदाचित् हमारे यहाँ से यह पद्धति पहुँची, किन्तु उन लोगो ने अनुवाद न करके क्रम के आधार पर नामकरण किये। रविवार को अरबी मे 'यौमुल अहद' अर्थात् 'पहला दिन' (यौम=दिन, अहद=एक), सोमवार को 'यौमुल इसनैन' (इसनैन= दो) अर्थात् दूसरा दिन, मगल को 'यौमुल सलासा' (सलासा=तीन) अर्थात् तीसरा दिन, बुध को 'यौमुल अरबआ' (अरबआ=चार) अर्थात् चौथा

दिन, और वृहस्पति को 'यौमुल ख़मीस' (ख़मीस=पाँच) अर्थात् पाँचवा दिन कहते है। शुक्र को मुसलमान जमा होकर एक साथ नमाज पढते है, अत उसे क्रम के अनुसार न कहकर 'यौमुल जुमआ' (जुमआ=जमा होना) अर्थात् जमा होने का दिन कहा। शनिवार के लिए अरबी मे 'यौमुल सब्त' है। यह 'सब्त' शब्द विवादास्पद है। अरबी के कोशकारो ने 'सब्त' को अरबी शब्द माना है तथा अरबी धातु 'सीन-बे-ते' (=आराम क ना) से इसे जोडा है। अर्थात् खुदा ने ६ दिन मे ससार को बनाया और इस सातवे दिन आराम किया, अत यह 'यौमुल सब्त' या 'आराम का दिन' है। ज्यू लोगो मे भी 'सैबेथ डे' पूर्ण आराम का दिन है। बार्डले ने 'सैबेथ' की व्युत्पत्ति पर विस्तार से विचार किया है, किन्तु किसी निष्कर्ष पर नही पहुँच सके है। हिब्रू भाषा मे यह शब्द 'शपात्तुम' तथा बेबिलोनियन मे 'शबातुम' या 'शपातुम' रूप मे मिलता है। कुछ लोगो ने 'शपातु' का अर्थ 'पूरा होना' माना है, अर्थात् इस दिन सप्ताह पूरा हुआ या सृष्टि-निर्माण का कार्य पूरा हुआ। इसे ठीक मानें तो शनिवार अरबी मे 'पूरा होने का दिन' हो गया। बार्डले के अनुसार यह शब्द मूलत इन भाषाओ मे किसी का भी नही है, और किसी अन्य भाषा से इनमे आया है। किन्तु यह किस भाषा से आया है, इसका उत्तर उन्होने नही दिया है। मेरा अनुमान है कि इस सातवे दिन के लिए 'सप्त' शब्द सस्कृत से आया है जो अरबी मे 'सब्त,' हिब्रू मे 'शपात्तुम' या 'शपत्तुम' (स० सप्तम्) तथा बेबिलोनियन मे 'शपातुम' या 'शबातुम' आदि हो गया है। ज्यू लोगो मे यही 'सैबेथ' है।

ईरान मे भी दिनो के नाम क्रम के आधार पर रखे गये। फारसी मे दिन के लिए 'शम्बा' शब्द है। इसी से यकशम्बा (रविवार), दोशम्बा (सोमवार), सेहशम्बा (मगल), चहारशम्बा (बुध) तथा पजशम्बा (वृहस्पति) नाम हुए। शुक्रवार के लिए ईरानियो ने 'जुमा' शब्द रखा। शनिवार के लिए यहाँ अब सिर्फ 'शम्बा' शब्द प्रयुक्त होता है, जो दिन का समानार्थी है। यथार्थत शनिवार के लिए यहाँ का पुराना शब्द 'शम्बिद' है, 'शम्बा' सम्भवत उसी का विकसित रूप है। दिन के समानार्थी 'शम्बा' के रूप मे अभिन्न होते हुए भी अर्थ मे यह भिन्न है। किन्तु

'शम्बिद' का अर्थ शनिवार कैसे हुआ, इसका उत्तर कहीं नहीं मिला। मेरा अनुमान यह है कि मूलत यह शब्द 'शम्बर विदा' अर्थात् 'विदा का दिन' या 'सप्ताह का अन्तिम दिन' था और 'शम्बिद' उसी का विकसित रूप है।

जैसा ऊपर कहा गया है, ईरान मे सोमवार के लिए 'दोशम्बा' शब्द है, साथ ही 'पीर' शब्द का भी उसके लिए प्रयोग होता है। अनुमानत इस नाम के प्रयोग का कारण यह है कि इस अरबी शब्द 'पीर' का अर्थ बडा-बूढा होता है। और सोमवार हज़रत मुहम्मद साहब के जन्म और मृत्यु का दिन होने से उनके अनुयायियो के लिए निश्चय ही, अन्य दिनो की तुलना मे बडा या बुजुर्ग है।

चीन मे भी अरब और ईरान की भाँति क्रम के आधार पर ही दिनो के नाम रखे गये। उन लोगो ने यह पद्धति भारत से ली, या भारत से अरब होते हुए वहाँ पहुँची, कहना मुश्किल है। यो, वहाँ रविवार के लिए जो शब्द है उसमे 'सूर्य का दिन' भाव का भी सकेत है, जिससे लगता है कि सीधे भारत से ही ली।

'ली पाई' का चीनी मे अर्थ 'पूजा की छुट्टी' या 'पूजा का दिन' है, किन्तु दिनो के नामो के साथ लगकर वह जैसे 'दिन' का समानार्थी हो गया है। यो 'सप्ताह' के लिए भी इसका प्रयोग होता है। रविवार के लिए चीनी शब्द 'ली पाई ज' या 'ली पाई रिह्' है। यदि 'ली पाई' का अर्थ 'दिन' माना जाय तो इसका मूल अर्थ 'सूर्य का दिन' होगा, क्योकि शघाई की बोली मे 'ज' का अर्थ 'सूर्य' है। 'रिह्' का भी पुराना अर्थ 'सूरज' तथा आधुनिक अर्थ 'दिन' है। सोमवार चीन मे 'ली पाई ई' (ई=एक), मगल 'ली पाई अर्ह' (अर्ह=२), बुध 'ली पाई सान' (सान=३), वृहस्पति 'ली पाई सू' (सू=४), शुक्र 'ली पाई ऊ' (ऊ=५) तथा शनिवार 'ली पाई ल्यू' (ल्यू=६) कहलाता है।

उर्दू मे फारसी नाम ही प्रयुक्त होते है। यो इतवार और सनीचर भी चलते है। वृहस्पति को 'जुमेरात' अर्थात् 'जुमा के पहले का दिन' भी कहते है। दिल्ली की करखन्दारी बोली मे इतवार, पीर, मगल, बुध, जुमेरात, जुम्मा तथा हफ्ता कहते है। हफ्ता का अन्तिम दिन होने के

कारण शायद शनिवार के लिए हफ्ता चलता है। लहँदा के कुछ क्षेत्रो मे इतवार, सोम, मगल, बुध, वीर (वृहस्पति से विकसित रूप), शुक्कर तथा छणछण या छनिच्छर (शनिश्चर) चलते है। पजाबी मे ऐतवार तथा सँवार (सोमवार) भी चलते है। करनाल मे सामान्य जनता मे ऐतवार, सोमवार, मगलवार, बुधवार, वीरवार, जुमा, तथा बार चलते हैं। अन्तिम दोनो नाम फारसी के प्रभाव हैं। 'बार' 'शम्बा' अनुवाद है। कश्मीरी हिन्दुओ मे अतवार, चन्द्रवार, भौमवार, बुधवार, वृहस्पतिवार, जुमा, बटवार चलते हैं। 'बटवार' मे 'बट' का अर्थ है पण्डितो की जाति विशेष। इस प्रकार यह 'पण्डितो का दिन' है। कुछ ब्राह्मण इस दिन विशेष रूप से भीख माँगते है। रोहतक मे बिस्पतवार तथा शुक्कर भी चलते है, साथ ही शनिवार को वहाँ 'बार' या 'थावर' कहते है। थावर सस्कृत 'स्थावर' से विकसित है। शनीचर की चाल कदाचित् धीमी मानने के कारण यह नाम उसके लिए चला होगा।

१६ : : अंग्रेज़ी महीनों के नाम

समय नापने और उसका हिसाब रखने की आवश्यकता मनुष्य को उसके विकास के अत्यन्त प्रारम्भ काल मे ही पडी। आज हमारे पास समय को नापने के जितने भी रूप या साधन है, उनमे कुछ तो प्राकृतिक है और कुछ कृत्रिम है। प्राकृतिक रूपो या साधनो मे दिन-रात, पक्ष, महीना तथा वर्ष है। आदिम मानव को सर्वप्रथम प्रकाश और अन्धकार के कारण दिन-रात का पता चला होगा। स्पष्ट ही इस विभाजन का आधार सूर्य है। यह समय-विभाजन का प्राथमिक तथा सर्वाधिक सहज आधार है। कुछ और विकसित होने पर मनुष्य का ध्यान चन्द्रमा की ओर गया होगा तब उसने चन्द्रमा के आधार पर पक्ष तथा महीने के सम्बन्ध मे सोचा होगा, तथा कुछ और विकसित होने पर उसे एक ही प्रकार के ऋतु के बार-बार आने के कारण वर्ष का पता चला होगा। कहना न होगा कि इस अन्तिम विभाजन का आधार पृथ्वी का सूर्य के चारो ओर एक निश्चित समय मे घूमना है। सप्ताह, घण्टा, मिनट तथा सेकण्ड आदि अन्य साधन सर्वथा कृत्रिम है, और उनका विकास बहुत बाद मे हुआ।

शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से वर्ष ३६५. २४२१९९ दिनो का या १२ ३६८२७ महीनो का, तथा महीना २९. ५३०५९ दिनो का होता है। वर्ष, महीना तथा दिन के आधार पर समय को नापने के लिए विश्व मे अनेक कलेंडर प्रचलित रहे है तथा है। कुछ प्रमुख कलेडर इकलेसिऐस्टि-

कल (ecclesiastical), चीनी, मिस्री, बेबिलोनी, सुमेरी, यूनानी, रोमन, मुसलमानी तथा मेक्सिकन आदि है। भारत मे विक्रम, शक आदि ३३ से भी ऊपर कलेडर या संवत् प्रचलित रहे है। अंग्रेजी महीनो का सम्बन्ध रोमन कलेडर से है। आज रोमन कलेडर ही विश्व मे सर्वाधिक प्रचलित है।

रोमन कलेडर का आरम्भ ८०० वर्ष ईसा पूर्व या उससे भी पहले हुआ था। कुछ लोग इसका प्रारम्भ रोमुलस से मानते है। कुछ अन्य लोग एट्रुस्कन (Etruscan) वंश से इनका सम्बन्ध जोडते है। कुछ अन्यो के अनुसार इसका प्रारम्भ और भी पहले हो चुका था। कई प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि प्रारम्भ मे रोमन कलेडर का वर्ष केवल ३०४ दिनो का होता था और वर्ष मे केवल १० महीने होते थे। ये दस महीने थे : (१) मार्तिअस (Martius), (२) एप्रिलिस (Aprilis), (३) माइअस (Maius), (४) यूनिअस (Iunius), (५) क्विन्तिलिस (Quintilis), (६) सेक्सतिलिस (Sextilis), (७) सेप्तेम्बर (september), (८) आक्तोबर (October), (९) नवम्बर (November), (१०) देसेम्बर (December)। प्राय आज १२वे महीने का नाम दिसम्बर, ११वे का नवम्बर, १०वे का अक्तूबर तथा ९वे का सितम्बर सुनकर हमे अचरज होता है, किन्तु इस अव्यवस्था का राज यही है। जब वर्ष १० महीनो का था तो ये महीने ९वे, १०वे, ११वे और १२वे नही थे, अपितु दो-दो महीने कम अर्थात् ७वे (सितम्बर), ८वे (अक्तूबर), ९वे (नवम्बर) और १०वे (दिसम्बर) थे। अब वर्ष मे १२ महीने हो जाने पर भी वे ही पुराने नाम चल रहे है। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि तब वर्ष का आरम्भ मार्तिअस (मार्च) से होता था। इनमे ५ महीने ३१ दिन के, चार ३० दिन के तथा एक २९ दिन का होता था।

कुछ महीनो बाद यूनानी प्रभाव से वर्ष के अपेक्षाकृत अधिक सही काल का पता चला और लगभग ७०० ई०पू० मे न्यूमा पाम्पिलिअस (Numa pompilius) नामक राजा ने दिसम्बर के बाद जैनुअरिअस (Januarius) तथा फेबुअरिअस (Februarius) दो महीने और जोड़

दिये और वर्ष १२ महीनो या ३५५ या ३५६ दिन का[1] हो गया। उस समय भी वर्ष का आरम्भ मार्तिअस या मार्च से ही होता था, क्योकि नये महीने प्रारम्भ मे न जोडे जाकर अन्त मे जोड़े गये थे। बाद मे जैसा कि आगे दिया गया है, ४१४ ई०पू० मे जनवरी, फरवरी अन्त मे न समझे जाकर प्रारम्भ मे समझे जाने लगे और तब वर्ष का आरम्भ मार्च के स्थान पर जनवरी से माना जाने लगा। यो कुछ महीनो तक ऐसी भी स्थिति रही कि जनवरी पहला तथा फरवरी अन्तिम महीना माना जाता था। न्यूमा के समय मे फरवरी कुछ मतानुसार २८ तथा कुछ मतानुसार २९ दिन की हो गयी थी। मार्च, मई, जुलाई, अक्टूबर मे ३१ दिन होते थे तथा शेष ७ मे २९ दिन। तब से कई बार रोमन कलेडर के महीनो के नामो तथा दिनो मे परिवर्तन आये।

लगभग ४१४ ई०पू० मे दस मैजिस्ट्रेटो की समिति ने जनवरी, फरवरी को वर्ष के आरम्भ मे रखकर वर्ष का आरम्भ जनवरी से माना। साथ ही फरवरी को २८ दिन का निश्चित कर दिया।

इतना हो जाने पर भी कलेडर का रूप अभी तक ठीक नही था, इसी कारण कलेंडर के महीने मौसम से दूर होते जा रहे थे। जूलिअस सीजर के समय मे लोगो ने इस बात की शिकायत की और परिणाम यह हुआ कि गडबडियो को ठीक करने के लिए जूलिअस सीजर को कई बाते करनी पडी। मौसम के साथ महीनो को ठीक ढग से सम्बद्ध करने के लिए उसने ४६ ई०पू० वर्ष को १४ महीनो का बनाया। नवम्बर और दिसम्बर के बीच मे ३४ और ३३ दिन के दो नये महीने जोडे गये थे। फरवरी के बाद भी २३ दिन जोडें। इस प्रकार वह वर्ष ४४५ दिनो का हो गया। उसके बाद से वर्ष ३६५ दिन ६ घण्टो का माना गया जो पहली जनवरी ४५ ई०पू० से लागू हुआ। सीजर ने इसे ठीक से लागू करने के लिए महीनो के दिनो की सख्या भी बदली और वे इस प्रकार हो गये—

---

१. एक मत से ऐसा १५३ ई०पू० मे हुआ।

जनवरी ३१	जुलाई ३१
फरवरी २६-३०	अगस्त ३०
मार्च ३१	सितम्बर ३१
अप्रैल ३०	अक्तूबर ३०
मई ३१	नवम्बर ३१
जून ३०	दिसम्बर ३०

रोमन कलेंडर का यह रूप जूलियन कलेंडर कहलाता है। ४४ ई०पू० मे, सातवे अर्थात् क्विन्तिलिस (Quintilis) महीने को जूलियस की कलेंडर विषयक तथा अन्य क्षेत्रो मे महान् सेवाओ के लिए जूलिअस (Julius) कहा गया, जो अंग्रेज़ी मे जुलाई हो गया।

८ ई०पू० मे प्रथम रोमन सम्राट आगस्तस सीज़र ने कलेंडर में फिर परिवर्तन किया। इसमे विशेष उल्लेख्य बाते दो है—(१) ८वे (अर्थात् sextilius) महीने का नाम आगस्तस ने अपने नाम के आधार पर आगस्तस (Augustus) रखवाया। (२) अगस्त महीने मे पहले ३० दिन होते थे। इसने किसी अन्य महीने से इसे छोटा न रहने देने के लिए या जुलाई के बराबर करने के लिए इसके दिनो की सख्या ३१ करा दी। इसीलिए कुछ अन्य परिवर्तन भी करने पडे, जैसे फ़रवरी २६-३० के स्थान पर २८-२६ की कर दी गयी। एकरूपता के लिए सितम्बर को ३१ के स्थान पर ३०, अक्तूबर को ३० के स्थान पर ३१, नवम्बर को ३१ के स्थान पर ३० और दिसम्बर को ३० के स्थान पर ३१ दिनो का कर दिया गया। तब से यही क्रम तथा दिन चले आ रहे हैं। कुछ लोग इन परिवर्तनो मे कुछ का श्रेय जूलिअस सीज़र को भी देते हैं।

जूलियन वर्ष, जैसा कि कहा जा चुका है, ३६५ दिन ६ घण्टे का निश्चित किया गया था, किन्तु वस्तुतः वर्ष इससे ११ मिनट १४ सेकण्ड कम का होता है। परिणामत. इस कलेंडर में भी कुछ गड़बड़ियाँ होने लगी। इन्हे दूर करने के लिए पोप ग्रीगरी १३ ने फरवरी १५८२ ई० मे इसमे फिर कुछ सुधार किये। उन्ही के नाम पर अब यह कलेंडर ग्रीगोरिअन भी कहलाता है। यह कलेंडर भी पूर्णत ठीक नही है। इसमें वर्ष प्राकृतिक वर्ष से २६ सेकण्ड बड़ा है। किन्तु इससे कोई बहुत अधिक

गडबडी की सम्भावना नही है, क्योकि ३३२३ वर्ष बीतने पर ही एक दिन बढ सकेगा।[1]

नीचे महीनो के नामो पर सक्षेप मे विचार किया जा रहा है।

जनवरी (**January**)—इस नाम के आधार रोमन देवता जेनस (Janus) है। 'जेनस' भारतीय देवता गणेश की तरह 'प्रारम्भ करनेवाले' देवता ('जेनस' और 'गणेश' नाम मिलते-जुलते हैं। असम्भव नही कि 'जेनस' शब्द मूलत. 'गणेश' ही हो) माने गये है। प्रार्थना या बलिदान के अवसर पर 'जेनस' का स्मरण सबसे पहले किया जाता है। इसका सम्बन्ध वर्ष के प्रथम महीने से, महीने के प्रारम्भिक भाग से तथा दिन के प्रथम घण्टे से माना जाता है। इस प्रकार इनके आधार पर पहले महीने का नामकरण उचित ही है। 'जेनस' के दो मुख होते है। एक आगे देखता है दूसरा पीछे। यह भी अच्छा प्रतीक है। एक मुख बीतनेवाले वर्ष की ओर अभिमुख रहता है और दूसरा आनेवाले की ओर। पहले वर्ष का आरम्भ, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मार्च से होता था, बाद मे जनवरी से होने लगा। January शब्द लैटिन Januarius से सम्बद्ध है। लैटिन मे जनवरी का यही नाम था। इसका अर्थ है 'जेनस का'। अंग्रेज़ी मे १८वी सदी के पूर्व January शब्द इस महीने के लिए प्रचलित नही था। तब इसे Wulfmonath या 'भेडिए का महीना' कहते थे। इसका कारण यह था कि इस महीने मे खाने की तलाश मे भेडिए बस्ती मे घुस आया करते थे।

फ़रवरी (**February**)—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, पहले रोमन कलेडर मे वर्ष १० महीने का होता था। न्यूमा (Numa) के राज्यकाल में (७०० ई०पू०) जनवरी और फरवरी दो महीने नये जोडे गये। प्रारम्भ मे जनवरी पहला महीना था और फ़रवरी अन्तिम,

---

१ ऊपर सन्-सवत् या परिवर्तन-परिवर्द्धन के सम्बन्ध मे जितनी भी बाते कही गयी है, प्राय. सभी के सम्बन्ध मे विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद है, जिसका आशय यह है कि इन्हे पूर्ण निश्चित तथा सर्वसम्मत मत नही मानना चाहिए।

किन्तु बाद मे (एक मत से ४५२ ई०पू० मे) फरवरी को अन्तिम महीने से हटाकर दूसरा महीना कर दिया गया। प्रारम्भ मे फरवरी मे २६-३० दिन होते थे। उन दिनो अगस्त (इसका नाम पहले अगस्त नही, अपितु Sextılıs अर्थात् छठा महीना था) मे ३० दिन होते थे। अगस्त का नाम जब Augustus के नाम पर sextılıs के स्थान पर आगस्तस रखा गया तो यह सोचा गया कि आगस्तस का यह अपमान है कि जुलाई (जिसका नाम उसके चचा जूलियस सीजर के नाम पर था) में तो ३१ दिन हो और अगस्त मे ३० दिन। इस अपमान को दूर करने के लिए फरवरी से एक दिन निकालकर अगस्त को भी ३१ का कर दिया गया। तब से बेचारी फरवरी २८-२६ (केवल चौथे वर्ष ही २६ की हो पाती है) दिन की हो गयी।

फरवरी शब्द का सम्बन्ध लैटिन शब्द Februarıus से माना गया है। यह शब्द Februa से बना है, जिसका अर्थ 'शुद्धि की दावत' होता है। प्राचीन काल मे इस महीने मे १५ तारीख को शुद्धि की दावत होती थी। एक अन्य मत के अनुसार Februa का अर्थ है 'कोड़ा' (मूठ छोडकर)। रोम मे फरवरी के मध्य मे एक उत्सव होता था। इसमे बकरो का बलिदान किया जाता था और उनके चमडे के कोडे से नि.-सन्तान स्त्रियो को पीटा जाता था। लोगो का विश्वास था कि इस पिटाई से निपूती स्त्रियाँ सन्तानवती हो जाती हैं। इन्ही कोडो को लैटिन मे februa कहते थे। इस महीने मे इस उत्सव की प्रधानता के कारण इसी februa के आधार पर महीने को Februarius कहा गया। एक तीसरा मत यह है कि रोमनो की प्रसिद्ध देवी जूनो मैथुन, स्त्रीवर्ग तथा सन्तानोत्पत्ति आदि की देवी थी। सन्तानोत्पत्ति की देवी के रूप मे जूनो को Februarıa भी कहा जाता था। इस महीने निपूती स्त्रियो को सपूती बनाने का प्रयास किया जाता था, और यह Februarıa देवी की कृपा से ही सम्भव था। इसीलिए उसके नाम पर महीने को लैटिन मे Februarıus कहा गया, जो अग्रेजी मे फेबरुअरी हो गया। एक चौथा मत यह भी है कि इस महीने मे रोम के लोग आत्मशुद्धि के लिए तरह-तरह के कष्ट भोगकर साधना आदि करते थे, जिसे लैटिन मे februum कहते

है । लैटिन februarius का सम्बन्ध इसी से है और इसका मूल अर्थ है ('प्रायश्चित का महीना')। पाँचवे मत के अनुसार इस महीने मे februalia नाम का उत्सव होता था, जिसका अर्थ है शुद्धि-पर्व । लैटिन मे febru-are का अर्थ है 'शुद्ध करना' अत इस महीने का नाम इसी आधार पर पडा । इस प्रकार फरवरी का मूल अर्थ है 'सन्तानोत्पत्ति के कोडे का महीना' या 'सन्तानोत्पत्ति की देवी का महीना' या 'शुद्धि का महीना' आदि । फरवरी शब्द के अग्रेजी मे आने के पहले, इस महीने का नाम अग्रेजी मे Sporte-kalemonath अर्थात् 'पातगोभी के उगने का महीना' था । इस महीने मे इगलैड मे पातगोभी उगती थी । यह इस महीने की कदाचित् सबसे बडी विशेषता थी, इसीलिए महीने का यह नाम पडा था ।

मार्च (March)—इस शब्द का सम्बन्ध मूलत लैटिन Martius से है। Martius नाम, इस महीने को, रोमन लोगो ने युद्ध के देवता मार्टिस (Martis, लैटिन तथा अग्रेजी मे Mars—मगल—कहते है) के नाम पर दिया । इसी महीने सर्दियो के बाद बसन्त का आगमन होता था और लोग शत्रु पर आक्रमण करना प्रारम्भ करते थे। इस प्रकार यह युद्ध का महीना था, अत इसका नामकरण युद्ध के देवता 'मार्स' के आधार पर हुआ । Mars या Mortius से आगे चलकर Marz बना जो पुरानी फ्रेच तथा अग्रेजी आदि मे March हो गया । जूलियस सीजर के पूर्व रोमन कलेडर का, 'मार्च' पहला महीना था । इसी आधार पर इगलैड मे १७५२ तक, कानून आदि मे वर्ष का प्रारम्भ १ जनवरी से न मानकर २५ मार्च से माना जाता था । बाद मे मार्च को तीसरा महीना कर दिया । मार्च को पहले अग्रेज़ी मे Hlyd-monath अर्थात् 'तेज हवा का महीना' कहते थे । इस महीने मे इगलैड मे तेज़ हवाएँ चला करती थी । इसका एक दूसरा नाम Lencten-Manath भी था, जिसका अर्थ है 'बडा होनेवाला महीना' । इस महीने से दिन काफी बडे होने लगते है ।

अप्रैल ((April)—पुराने रोमन कलेडर का दूसरा और आधुनिक कलेडर का चौथा महीना । एक मत से पहले इसमे २६ दिन थे। जूलि-

यस सीजर ने इसमे एक दिन जोडकर इसे ३० दिन का बनवाया। अग्रेजी April शब्द का सम्बन्ध लैटिन शब्द aprilis से है। रोमन इसे इसी नाम से पुकारते है। इस शब्द की व्युत्पत्ति प्राय अनिश्चित मानी गयी है, किन्तु अधिकाश लोग इसे लैटिन शब्द asperire से सम्बद्ध मानते है, जिसका अर्थ 'खुलना' होता है। प्राचीन रोम मे यह कलियो के खिल-कर या खुलकर फूल बनने का महीना था। शेक्सपियर के The aprils in her eyes मे इसी ओर संकेत है। आधुनिक ग्रीक भाषा मे anoixis बसन्त को कहते है, किन्तु इसका मूल अर्थ 'खुला' या 'खोला हुआ' है। इससे भी उपर्युक्त व्युत्पत्ति को बल मिलता है। अग्रेज़ी मे पहले इस महीने को Easter Monath या 'ईस्टर का महीना' कहने थे। कहना न होगा कि यह नाम गद्यात्मक है तो रोमनो का 'कलियो के खिलने का महीना' नाम अत्यन्त कवित्वपूर्ण है।

मई (May)—अल्बन कलेडर का दूसरा, प्राचीन रोमन कलेडर का तीसरा, तथा वर्तमान कलेडर का पाँचवाँ महीना। लैटिन मे इसे Maius तथा प्राचीन फ्रासीसी मे Mai कहते थे। अग्रेजी मे वही से यह शब्द आया है। इसकी व्युत्पत्ति विवादास्पद है। कुछ विद्वानो के अनुसार रोम के बडे-बूढे तथा रईस Majores कहलाते थे और उन्हीं के सम्मान मे लैटिन मे मई महीने को Maius कहा गया, जिस प्रकार रोम के जवानो को Juniares कहते थे, अत उनके सम्मान मे बाद वाले महीने अर्थात् जून को (लैटिन मे) Junius कहा गया था। अन्य विद्वान इसकी दूसरी व्युत्पत्ति देते है। रोमन लोगो की एक देवी मैया (Maia) थी, जो हर-मीज़ नामक देवता तथा मर्करी (Mercury) की माँ थी। इन्ही के नाम पर लैटिन मे यह महीना Maius कहलाया। मई से इनका सम्बन्ध यह है कि मई की पहली तारीख़ को इनको एक गर्भवती शूकरी बलिदान की जाती थी। दूसरी व्युत्पत्ति ही अधिक प्रचलित है। 'मे' नाम के प्रचलन के पूर्व अग्रेजी मे इस महीने का नाम Thri milce अर्थात् 'तीन बार दूहने का महीना' था। इस नाम का कारण यह था कि मई मे दिन पर्याप्त बडे होते है, अत गाये दिन मे तीन बार दूही जा सकती है। कहना न होगा कि यह अग्रेज़ी नाम पूर्णत. गद्यात्मक था।

जून (June)—प्राचीन रोमन कलेडर मे यह वर्ष का चौथा महीना था, किन्तु उसके बाद छठा हो गया। एक मत से पहले इसमे २६ दिन होते थे। रोमुलस ने ४ दिन जोडकर इसे ३० दिन का बनाया। बाद मे न्यूमा ने एक दिन घटाकर इसे २९ कर दिया। जूलियस सीजर ने अपने काल मे १ दिन जोडकर इसे पुन: ३० दिन कर दिया। अंग्रेज़ी शब्द 'जून' लैटिन Junius, प्राचीन फ्रासीसी Juin से निकला है। इसके लैटिन नाम Junius की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे विवाद है। कुछ विद्वानो के अनुसार इस शब्द का सम्बन्ध रोमीय परिवार के नाम Junius से है। जूलियस सीजर को मारनेवाले इसी परिवार के थे। दूसरे मत के अनुसार स्त्रियो की (रोमनो मे) अधिष्ठात्री देवी Juno के आधार पर यह नाम पडा है। इसी कारण यह महीना 'विवाह का महीना' समझा जाता है। एक तीसरा मत यह है कि Junius का सम्बन्ध लैटिन शब्द Jungo से है, जिसका अर्थ होता है 'जोडना'। यह महीना पति-पत्नी को जोडता है अर्थात् उनका विवाह कराता है, अथवा रोमनो और सेबाइनो का मिलन इसी महीने मे हुआ था। चौथे मतानुसार प्राचीन रोम मे प्रथम कॉन्सल (एक प्रकार के न्यायाधीश) Junius Brutus थे। उन्ही के नाम का प्रथम शब्द इस महीने का नाम बन गया। एक पाँचवाँ मत यह है कि रोमुलस ने जिस प्रकार रोम के बडे-बूढे रईसो के नाम पर मई का नामकरण किया था, उसी प्रकार वहाँ के नौजवानो (जिन्हे Juniores कहते थे) के नाम पर जून महीने को Junius कहा था। बडे-बूढे मन्त्रणा के लिए थे और नौजवान युद्ध के लिए, अत दोनो के आदरार्थ इन महीनो का इस प्रकार नामकरण किया गया था। छठा मत भी इसी से सम्बद्ध है, जिसके अनुसार नौजवानो (जिन्हे वहाँ Juniores कहते थे) के विवाह का महीना होते के कारण इसे Junius कहा गया था। सातवें मत के अनुसार लैटिन मे gens का अर्थ है 'परिवार'। जून का महीना विवाह का महीना होने के कारण 'परिवार बनाने का' महीना भी है, अत. gens के आधार पर इसे Junius कहा गया। अधिक मान्यता जूनो देवी वाले मत को मिली है। पहले, जून को अंग्रेज़ी मे Sere-Monath अर्थात् 'सूखा महीना' कहते थे।

जुलाई (July)—प्राचीन रोमन कलेंडर मे यह वर्ष का ५वाँ महीना था इसीलिए इसका नाम लैटिन मे Quintilis या पाँचवाँ था। बाद मे जनवरी और फरवरी दो नये नामो के जुड जाने के कारण वर्ष मे महीनो की सख्या १२ हो गयी और तब से यह सातवाँ महीना हो गया। सातवाँ महीना हो जाने पर भी इसका पुराना नाम Quintilis (पाँचवाँ) ही प्रचलित रहा। ४४ ई०पू० मे जूलियस सीजर की हत्या हुई। सीज़र जुलाई के महीने मे ही (१२वी तारीख को) पैदा हुआ था। उसके सम्मान मे प्रसिद्ध सेनापति मार्क ऐण्टनी ने रोम की सिनेट के समक्ष उसकी मृत्यु के बाद यह प्रस्ताव रखा कि जुलियस सीजर के सम्मान मे उसके जन्म-मास क्विण्टिलिस को Julius नाम दिया जाय। सिनेट ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और उसी वर्ष से यह महीना (लैटिन मे) Julius कहलाने लगा। अग्रेज़ी मे इसे पहले Julie लिखते थे, बाद मे यह July हो गया। एक मत से अत्यन्त प्राचीन काल मे इस महीने मे ३६ दिन होते थे। रोमुलस ने ३१ कर दिया और न्यूमा ने ३०। अपने राज्य-काल मे जुलियस सीज़र ने इसे फिर ३१ दिन का कर दिया। एक मत से उसके पूर्व ही यह ३१ का हो गया था। तब से अब तक यह महीना ३१ दिन का चला आ रहा है। अग्रेजी मे पहले इस महीने को Heg-Monath (सूखी घास या 'हे'—hay—का महीना) या Maed-Monath (घास के मैदान या चरागाह का महीना) कहा जाता था। इस महीने मवेशी चरागाह मे रहते थे, तथा घास सुखाने के लिए काटी जाती थी।

अगस्त (August)—प्राचीन रोमन कलेंडर का यह छठा महीना था, और इसीलिए इसे लैटिन मे sextilies (अर्थात् छठा) कहते थे। बाद मे जनवरी, फरवरी के जुड जाने पर वर्ष जब १२ महीने का हो गया तो अगस्त छठा से आठवाँ महीना बन गया, यद्यपि तब भी वही पुराना नाम (sextilies) प्रयुक्त होता रहा। जुलियस सीज़र का भतीजा आक्टेविअन (octavian) रोम का प्रसिद्ध सम्राट् हो चुका है। रोम साम्राज्य की उन्नति मे इसने बहुत योगदान किया था। इसी से प्रसन्न होकर वहाँ की सिनेट ने इसे Augustus (महान्, श्रद्धा का पात्र, भव्य) की पदवी दी। यह अपने चचा सीजर की तरह ही अपनी ख्याति चाहता

था। इसके लिए अन्य कामो के अतिरिक्त यह वर्ष के किसी महीने का नाम भी अपने नाम से रखवाना चाहता था, क्योकि जूलियस सीजर के नाम के आधार पर 'जुलाई' का नाम पड चुका था। यो इसका जन्म तो सितम्बर मे हुआ था, किन्तु अगस्त मे इसने कई बडे-बडे काम किये थे, अत यही महीना उसके लिए सौभाग्यशाली एव शुभ था। इसकी इच्छा जानकर रोम की सिनेट ने sextilies महीने को इसके नाम Augustus से पुकारने का निश्चय किया और तभी (८ ई०पू०) से यह महीना पुराने नाम के स्थान पर आगस्तस (Augustus) कहा जाने लगा। अगस्त मे पहले २९ दिन होते थे, किन्तु जूलियस सीज़र ने इसमे ३० दिन कर दिये थे। रोम की सिनेट ने सोचा कि जूलियस सीजर के नाम पर पुकारे जानेवाले जुलाई महीने मे ३१ दिन है, अतः अगस्त मे केवल ३० दिन का होना आगस्तस या आक्टेवियन की अप्रतिष्ठा है। यही सोचकर फरवरी मे से एक दिन लेकर जुलाई की तरह अगस्त को भी ३१ दिन का कर दिया। एक अन्य मत से पहले सितम्बर ३१ दिन का था। उसी से एक दिन लेकर इसे ३१ किया गया और तब से सितम्बर ३० का रह गया। अंग्रेजी मे पहले इसी महीने को Weod Monath (अर्थात् Weed का महीना) कहते थे। उस समय Weed शब्द आज के अर्थ मे न होकर सामान्य रूप से हरी पत्तियो आदि के लिए प्रयुक्त होता था। इस प्रकार यह 'हरी पत्तियो का महीना' था।

सितम्बर (September)—प्राचीन रोमन कलेडर मे वर्ष मे केवल १० महीने ही होते थे, और वह मार्च से प्रारम्भ होता था। सितम्बर सातवाँ महीना था, अत 'सात' के लिए लैटिन शब्द septem के आधार पर इसे सातवाँ महीना अर्थात् September कहा गया।[1] बाद मे इसके ९वाँ

१. सेप्टेम्बर मे Septem तो सात है, किन्तु 'बर' क्या है, यह स्पष्ट नही है। विद्वानो के अनुसार (बृहत् आक्सफोर्ड कोश मे भी) 'बर' की व्युत्पत्ति का पता नही है। मेरा अपना विचार यह है कि इसका यहाँ अर्थ है 'वाला' अर्थात् सेप्टेम्बर का अर्थ है 'सातवाँ' या 'सातवाला' या 'सात को ले जानेवाला'। (मूलत यह मूल भारतहित्ती भाषा का

महीना हो जाने पर भी नाम यही बना रहा। यद्यपि रोमन सिनेट इसके पक्ष मे नही थी। इसी गडबडी के कारण यूरोप मे बहुतो ने इस नाम को नही अपनाया। स्विटजरलैंड मे अब भी Herbst monat (अर्थात् जई का महीना) है। 'हार्वेस्ट' का मूल अर्थ 'जई' या 'जौ' है। इसी महीने मे उससे शराब बनायी जाती थी। पहले अंग्रेज़ी मे भी इसी कारण इसे Haerfest Monath अर्थात् 'जौ का महीना' कहते थे। एक मत से इसमे प्रारम्भ से ही ३० दिन चले आ रहे है। दूसरे मत के अनुसार पहले इसमे २९ दिन थे, फिर ३१ हुए और फिर ३० ही रह गये। एक मत से इसी से एक दिन लेकर अगस्त को ३१ दिन का कियां गया। एक अन्य मत के अनुसार जब अगस्त को ३० से ३१ का बनाया गया तो दिनो की नयी व्यवस्था मे सितम्बर के भाग्य मे ३० ही पडे।

अक्तूबर (October)—प्राचीन रोमन कलेंडर मे वर्ष मे केवल १० ही महीने होते थे, और वर्ष का आरम्भ मार्च से होता था, इसीलिए इस आठवे महीने को लैटिन मे Octo अर्थात् आठ के आधार पर October कहा गया था। बाद मे जब वर्ष १२ महीने का हो गया तो भी नाम यही चलता रहा। यो जुलाई और अगस्त की भॉति इसके नाम को बदलने के कई प्रयास किये गये किन्तु कोई अन्य नाम चल नही सका। उदाहरणार्थ रोमन सेनापति Germanicus Caesar इसे अपने नाम के आधार पर जर्मेनिकस् नाम देना चाहता था, किन्तु वह बहुत सफल न हो सका। इसी प्रकार इसके लिए विभिन्न लोगो द्वारा ऐंटोनिनस (antoninus), हरक्यूलिअस (Herculeus), कमोडस (Commodus), फास्टिनस (Faustinus) आदि अन्य नाम भी दिये गये, किन्तु चल न सके।

वही शब्द है जिसे pher के रूप मे स्वीकार किया गया है। सं० भर (भरति), अंग्रेजी bear, मध्यकालीन अंग्रेज़ी beren, प्राचीन अंग्रेज़ी berun, ऐंग्लो-सैक्सन beran, प्राचीन उच्च जर्मन beran, गोथिक bairan, प्राचीन स्लाव bisa (ti), आर्मीनिअन berem, ग्रीक phero, तथा लैटिन ferre एव fero आदि इसी से सम्बद्ध हैं। यह 'बर' इसी अर्थ मे अक्तूबर, नवम्बर तथा दिसम्बर मे भी है।

स्लाव लोग पत्तियो के सूखने के आधार पर इसे 'पीला महीना' कहते रहे है। ऐंग्लो-सैक्सन इससे जाडा का प्रारम्भ मानने से इसे Wintefyll-eth कहते थे। अग्रेजी मे इस महीने मे शराब-विशेष बनाने के कारण इसे Win-monath अर्थात् 'शराब का महीना' भी कहते रहे है। इस महीने मे बनी शराब अब भी 'आक्टोबर' कहलाती है। पहले इसमे ३१ दिन थे। बाद मे ३० हो गये थे। नयी क्रम-व्यवस्था मे यह पुन ३१ का हो गया।

नवम्बर (November)—प्राचीन रोमन कलेंडर मे वर्ष मे १० महीने होते थे और यह नवाँ महीना था, अत लैटिन novem अर्थात् ९ के आधार पर इस नवे महीने को लैटिन मे November (या Novembris) कहा गया। बाद मे बारह महीने हो जाने पर जब यह ११वाँ महीना हो गया तब भी यही नाम चलता रहा। रोमन सिनेट राजा Tiberius के आधार पर इसे 'टिबेरिअस' नाम देना चाहती थी, किन्तु राजा ने यह कहकर इसे अस्वीकार कर दिया कि यदि १३ राजे अपने-अपने नामो पर महीनो का नाम रखना चाहे तो क्या होगा। पहले इस महीने मे पशुओ का बलिदान देवताओ के नाम पर किया जाता था, अतः इसे पहले अग्रेजी मे 'रक्त-मास' या 'बलिदान-मास' (Blod-monath या Blot-monath) कहते थे। कुछ लोग तेज़ हवा बहने के कारण इसे 'हवा का महीना' (Wind-monath) भी कहते थे। पहले इसमे २९ दिन होते थे, बाद मे ३१ हो गये थे, किन्तु आगस्तस के समय मे महीनो के दिनो की नयी व्यवस्था मे इसमे ३० ही रह गये।

दिसम्बर (December)—अत्यन्त प्राचीन काल मे रोमन कलेंडर के वर्ष मे केवल १० महीने होते थे, और दसवाँ महीना दिसम्बर था अत लैटिन decem (अर्थात् १०) के आधार पर इस महीने को दिसम्बर कहा गया। बाद मे वर्ष मे १२ महीने हो जाने पर यह बारहवाँ महीना हो गया, किन्तु नाम वही पुराना ही चलता रहा। यो कुछ लोगो ने इसे बदलने का प्रयास किया, किन्तु कोई अन्य नाम चल नही सका। कोई इसे canus अर्थात् 'श्वेत (बर्फ पडने के कारण) मास,' कोई gelidus अर्थात् 'कुहरे का मास,' तथा कोई fumosus अर्थात् 'धुएँ का मास' कहना चाहते थे।

प्रसिद्ध रोमन सम्राट जूलियस अपनी पत्नी के सम्मान मे इसे amazonius कहना चाहता था, किन्तु रोमन सिनेट सहमत नही हुई। पहले अंग्रेजी मे इसे mid-winter-monath अर्थात् 'मध्यशीत मास' या winter-monath अर्थात् 'शीत मास' कहते थे। ईसाई लोग ईसा के जन्म के कारण इसे 'पवित्र मास' (Halıgh monath) कहते थे। जर्मन अब भी इसे christ-monat कहते है। पहले इसमे २९ दिन थे, बाद मे ३० हुए। आगस्तस के काल मे अगस्त को ३१ दिन करने मे महीनों के दिनो का जो नया क्रम चला, उसमे इसे ३१ दिन का कर दिया गया।

१७ : : कहारों की सांकेतिक शब्दावली

'कहार' (या कँहार) उत्तर भारत की एक बडी प्रसिद्ध जाति है। इनका प्रमुख पेशा घरो मे पानी भरना, चौका-बर्तन करना, मछली मारना, सिंघाडे की बेल लगाना तया कन्धे पर बहँगी, पालकी, नालकी, मियाना या डोली ढोना है। इस प्रकार 'पानी के काम' तथा 'कन्धे पर ढोना' उनके मुख्य काम है। ये द्विजजातीय पुरुष और निम्नजातीय स्त्री से उत्पन्न माने गये है। यो ये लोग अपने को जरासन्ध का वशज मानते है। कमकर (कर्मकर), धीमर (धीवर) तथा मगहिया (मागधी) आदि इनकी कई उपजातियाँ है। कहारो की गणना शूद्रो मे होती है, किन्तु इनका छूआ पानी तथा पक्का खाना अखाद्य नही है।

'कहार' शब्द का सम्बन्ध हिन्दी शब्द-सागर ने 'स्कन्ध-भार' या 'कं (पानी)+हार' से माना है। टर्नर ने अपने नेपाली कोश मे तुलना के रूप मे सस्कृत काचः (छडी), पालि काजो आदि दिया है और इसी से सम्बद्ध पालि 'काजहारको' से कहार को जोड़ा है। मेरे विचार मे इसका सम्बन्ध सस्कृत 'काहार' या उसके स्वार्थे प्रत्यय 'क' युक्त रूप 'काहारक' से है। जैमिनी के भारतसंहिता के अश्वमेधपर्व के १०वे अध्याय में एक श्लोक है—

> तथा गारुडिका वीरा क्षुरकर्मोपजीविका।
> व्याधा काहारकाः पुष्टाः कृष्ण सवाहयन्ति ये।

यहाँ कदाचित् इसी जाति की ओर संकेत है।

कहार, अपने उपर्युक्त पेशो मे, डोली (प्राय स्त्रियो के चढने के लिए), पालकी (प्राय. मर्दो के चढने के लिए), नालकी (नौशे के चढने के लिए) तथा मियाना (गरीबो के लिए) ढोते समय विशेष प्रकार की साकेतिक शब्दावली का प्रयोग करते है। इस शब्दावली मे शब्द दो प्रकार के है। ज्यादातर तो ऐसे है जो उपर्युक्त वाहनो को ढोते समय पीछे चलनेवाले कहारो को रास्ते के खतरे से सावधान करने के लिए है, ताकि वे पीछे होने से आगे का रास्ता न देख पाने के कारण गिर या घायल न हो जाये। दूसरे प्रकार के शब्द केवल मनोविनोद के लिए है, जिनका उद्देश्य है इस कठिन कार्य के कारण उद्भूत थकावट को कम करना। यो पहले वर्ग के शब्दो मे भी मनोविनोद की सामग्री कम नही होती।

देहात मे रास्तो मे प्रायः काँटे मिलते है। उनसे पीछेवाले कहारो को बचाने के लिए आगेवाले कहार 'सोनहुल' (स० स्वर्ण+'हुल' प्रत्यय) या 'रुपहला' (स० रूप्य+'हल' प्रत्यय) कहते है, जिसे सुनकर पीछे वाले कहार सतर्क हो जाते है। काँटे प्राय या तो पीले (जैसे भजकटैया, जिसे सस्कृत मे कण्टकारि कहते है) होते है या सफेद (जैसे बबूल)। पीले काँटे के लिए 'सोनहुल' अर्थात् 'सुनहरा' तथा सफेद के लिए 'रूपहला' का प्रयोग कितना काव्यात्मक है। यदि छोटे-छोटे बहुत-से काँटे एक स्थान पर हो तो 'वजहीं' कहते हैं। ऐमे काँटो के ढेर पर पैर पडने से 'बज' की आवाज होने के कारण कदाचित् यह नाम दिया गया है। रास्ते मे यदि ईंटो का ढेर हो तो 'जमावडा' (अरबी जमा+'आवड़ा' प्रत्यय) का प्रयोग करते है। यदि ईंटो के बडे-बड़े टुकड़े हों तो कहार उनके लिए 'कत्तल' का प्रयोग करते है। पूछने पर एक वृद्ध कहार ने बताया कि ये पैरो को कत्ल (अरबी) कर सकते हैं, इसीलिए इन्हे हम लोग 'कत्तल' कहते है। कहना न होगा कि यह नाम भी कम मनोरजक नही है। कभी-कभी रास्ते पर ईंट की रोडियाँ होती है जो दूर से देखने मे लाल गलीचे जैसी लगती है। इनके आने पर कहार 'गलीचा' (फारसी) शब्द का प्रयोग करते हैं। पैरो को छील देनेवाली रोडियो को नरम गलीचा का

नाम देना कहारो की व्यग्य-प्रियता का अच्छा उदाहरण है। रास्ते की ठोकर को ये लोग 'भारी-सी' तथा रास्ते मे निकली जड (पेड की) को 'जड-वाला' कहते है। कभी-कभी रास्ते मे नाली पड जाती है जिसे पार करने के लिए सामान्य से बडा कदम उठाने की आवश्यकता पडती है। इसीलिए नाली पडने पर आगेवाला कहार 'भरकदम' (भर=पूरा, कदम-अरबी) या 'सवाकदम' (सस्कृत सपाद>सवा) कहता है, जिसे सुनकर पीछे के कहार बडे डग से नाली पार कर लेते है। रास्ते के गड्ढे पैर तोड सकते है, अत उनके आने पर 'तोडताड' (तोड+तोड का प्रतिध्वनि शब्द 'ताड') कहते है। रास्ते मे कोई बडा बिल आ जाय तो 'पाँव-बिल्लनी' (पाद+बिल+नी प्रत्यय) कहते है। बिल को 'बिल्लनी' कहने मे भी व्यंग्य है। रास्ते मे यदि ऐसा स्थान आ जाय जो भीतर से खोखला हो तो 'धामक' कहते है। उस पर पैर पडने पर धमाके साथ जमीन बैठ जाने के भय के कारण यह नाम पडा है। धमाका (ध्वन्यात्मक शब्द) को ही इन्होने धामक कर लिया है। रास्ते मे पत्थर के आने पर पहाडिया (पहाड, सस्कृत पाषाण) कहते है। पत्थर को पहाडिया अर्थात् 'पहाडी व्यक्ति' कहना मानवीकरण का अच्छा उदाहरण है। रास्ते मे कीचड आने पर कहार 'चाहट' या 'चहट' कहते है। भोजपुरी मे कीचड के अर्थ मे 'चहटा' का प्रयोग होता है, जो कदाचित् ध्वन्यात्मक शब्द है। रास्ते मे यदि धूप से जलती रेत या धूल हो तो 'भूभुर' कहते है। यह अवधी तथा भोजपुरी का प्रचलित शब्द है। तुलसी ने भी इसका प्रयोग किया है—पोछि पसेऊ बयारि करो अरु पाँय पखारिहो भूभुरि ठाढे। इसका सम्बन्ध सस्कृत भू+भूर्ज से हो सकता है। यो टर्नर नेपाली 'भुब्रो' को कल्पित शब्द भूरो से जोडते है। रास्ते मे यदि कोई कुआँ पड जाय तो ये लोग 'समुन्दरसोख' (समुद्र को सोखने—शुष्—वाला) कहते है। स्पष्ट ही यह नाम भी व्यग्य-विनोदपूर्ण है।

खेत के बीच चलनेवाले इस बात से अपरिचित नही है कि ईख की पत्तियाँ अपने अत्यन्त पास से होकर तेज़ चलनेवाले को लहूलुहान कर देती है। इसीलिए कहार रास्ते मे ईख आने पर 'झपट' (टर्नर इसे कल्पित सस्कृत शब्द झप्पट्ट से तथा जूल ब्लाख़ सस्कृत 'झप' से सम्बद्ध

करते है) कहते है, अर्थात् झपटकर या जल्द ईख की पत्तियो से अपने को बचाने के लिए तैयार हो जाइए। कँटीली झाडियाँ पास से तेज़ चलनेवाले को नोच लेती है, इसीलिए उनके आने पर वे 'नोचनी' (सस्कृत लुचन+ई) कहते है। इसी प्रकार किसी पेड का कोई भाग यदि रास्ते पर ऐसे झुका हो कि आँखो या मुँह पर उससे झटका लगने का अन्देशा हो तो 'पलकमार' (पलक' को हिन्दी शब्द-सागर ने सस्कृत पल+क माना है, किन्तु यथार्थत यह फारसी का शब्द है) कहते है। इस शब्द मे भावी खतरे का पूरा चित्र है। लगभग इसी स्थिति मे 'बालादर' (बाला फारसी शब्द है तथा इसका अर्थ है 'ऊपर;' 'दल' दरेरा—सं० दल—या 'झटका' है) का प्रयोग भी मिलता है। उन पूर्ण अशिक्षितो की भाषा मे फारसी का एक ऐसा शब्द जो हिन्दी मे भी प्रायः बहुप्रचलित नही है, कैसे आ गया है, समझ मे नही आता।

मकान या किसी अन्य चीज़ के कोने कभी-कभी निकले होते है, जिनकी ओर सामान्यत. किसी की दृष्टि नही जाती, किन्तु जो जरा भी असावधानी से लगकर घायल कर सकते है। इनके आने पर कहार 'खोफिया' (अरबी खुफिय) कहते है। कहना न होगा कि 'खोफिया' नाम इसके लिए बहुत ही उपयुक्त है। ये भी खुफिया की तरह ही अपना काम छिपे-छिपे करते है। कभी-कभी गली इतनी सँकरी होती है कि बीच मे दरेरा या धक्का लगने का भय रहता है। इसके लिए ये लोग 'रगर' ('रगड' अनुकरणात्मक) शब्द का प्रयोग करते है। अँधेरे के कारण रास्ता ठीक से दिखायी न पडने पर 'झलमल' (दृश्यात्मक शब्द) का प्रयोग किया जाता है।

रास्ता यदि ढालुवाँ है तो व्यंग्य-रूप मे विरोधी सज्ञा 'चढ़ाई' (सस्कृत उच्चलन, प्राकृत उच्चडन, हिन्दी चढ़ना) का प्रयोग होता है। जहाँ सचमुच चढाई होती है वहाँ 'पाँवबली' (सस्कृत पाद+बली) कहते है। कदाचित् आशय यह है कि पाँवो को मजबूत कर लो।

थोडी-थोडी दूर चलने पर कहार बदले जाते है। एक बारी समाप्त होने पर आगेवाले कहते है 'पार है' (एक मजिल पार हो गयी है) और सभी खडे हो जाते है, तथा वे कहार जो सुस्ता चुके होते है,

निवर्तमान कहारो का स्थान ले लेते है। जब पालकी आदि ज़मीन पर रखनी होती है तो 'बोल दो' (अर्थात् समाप्त कर दो) कहते है। इसी प्रकार फिर आरम्भ करने के लिए 'डोल जाओ' या 'चालू हो' कहा जाता है।

दूसरे प्रकार के शब्दो या प्रयोगो मे जिनकी उपयोगिता केवल मनोविनोद है, एक-दो तो अश्लील है, जैसे स्त्रियो को देखकर ये लोग 'पलगतोर' (पलग तोडने को बाध्य करनेवाली), या 'चढ जाओ' कहते है तथा कुछ अन्य 'भुकना' (कुत्ते के लिए, सस्कृत बुक्क+ना), 'ज़गी' (घोडे के लिए, फारसी ज़ग+ई), छया (पेड के लिए, सस्कृत छाया), तथा डासनी (चारपाई के लिए, सस्कृत दर्भ, हिन्दी डाभ+आसन+ई) आदि है। ईख देखकर ये 'सक्कर की पुडिया' (स० 'शर्करा' की स० 'पुटिका') या 'सकर की लकडी' (सं० 'शर्करा' की स० लकुट) कहते है। अंग्रेजी 'शूगरकेन' या रूसी 'साख़रनी स्तनीक' भी 'शक्कर की लकडी' ही है।

यह थी उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलो मे रहनेवाले कहारो की बहु-प्रचलित साकेतिक शब्दावली। बिहार, बगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, उडीसा आदि मे भी कहार है, और उनकी भी अपनी साकेतिक शब्दवली है, किन्तु उनका अध्ययन अभी तक कदाचित् नही हुआ है, कम-से-कम मेरे देखने मे नही आया।

